प्रधान संपादक- कैलाश आदमी

निर्दलीय

अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

- साहित्य
- कला
- संस्कृति
- उद्यमिता

उप संपादक : सरिता गर्ग 'सरि'
प्रवासी संपादक : डॉ. सुनीता शर्मा

वर्ष : २० | अंक : ०५ | नई दिल्ली, नवंबर २०२५ | मूल्य : १०/- | विशेषांक : ५०/-

शिक्षा, भाषा और साहित्य विशेषांक

शिक्षा-भाषा-साहित्य की त्रिवेणी में नहाइए।
भारतीय संस्कृति का परचम सर्वत्र लहराइए।। - कैलाश आदमी

(आमुख) पृष्ठ ४-७

मासिक 'निर्दलीय' के आगामी अंक

विगत दो दशकों से नियमित प्रकाशित निर्दलीय प्रकाशन की बहुरंगी अंतर्राष्ट्रीय मासिक पत्रिका 'निर्दलीय' प्रति माह विशेषांक के रूप मे प्रकाशित हो रही है। नई दिल्ली स्थित सलाहकार श्री सुरेश खांडवेकर एवं श्रीमती कविता मल्होत्रा और संरक्षक सेठ रामनिवास गुप्ता एवं श्री रमेश सिंह राघव के सहयोग से मासिक पत्रिका की साज-साज्जा और सामग्री में निरंतर उत्कृष्टता एवं विकास परिलक्षित है।

इस तारतम्य में आगामी वर्ष २०२५-२६ के लिए संपादकीय मंडल ने बारह विषयों का चयन किया है। आप सभी से प्रार्थना है कि आप इन विषयों पर अपने आलेख, खट्टे मीठे अनुभव, काव्य, कथा- कहानी,कविता, प्रहसन,संस्मरण अदि मासिक पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। आपसे निवेदन है निम्नलिखित विषयों पर प्रकाशित होने जा रहे निर्दलीय मासिक पत्रिका के विशेषांकों के लिए विषयांतर्गत सामग्री अवश्य भेजें। माहवार विषय इस प्रकार है--

दिसंबर - पर्यावरण एवं जलवायु संरक्षण, जनवरी- विश्व शांति, फरवरी - सर्वधर्म समभाव, मार्च- वासंती उल्लास, अप्रैल - फुर्सत, मई -सैर सपाटा, जून-मुखर अभिव्यक्ति, जुलाई- निर्दलीय के अंतरराष्ट्रीय वार्षिक सम्मान समारोह पर केंद्रित, अगस्त - स्वाधीनता और लोकतंत्र, सितंबर - भाषाई सौहार्द, अक्टूबर - पुस्तकें ही जीवन, नवंबर- शिक्षा और साहित्य

माह दिसंबर २०२५ में प्रकाशित होने जा रहे विशेषांक हेतु - पर्यावरण एवं जलवायु संरक्षण, विषय पर रचनाएं/आलेख ३० नवंबर २०२५ तक व्हाट्स ऐप/मेल पर मिल जाना चाहिए।

* कैलाश आदमी, संस्थापक संपादक 9424443401/ 8839797448

मेल nirdaliyadaily@gmail.com

निर्दलीय से जुड़ना अब आसान

निर्दलीय दैनिक / साप्ताहिक /मासिक (मुद्रित आकार)का शुल्क भेजना अब आसान हो गया है क्योंकि अब आप भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा भोपाल के हमारे निर्दलीय के खाता क्रमांक- 30030303507(IFSC code- sbin0001308 के अलावा हमारे मोबाइल फोन 9424443401 से जुड़े फोन पे या गूगल पे से भी शुल्क /सहयोग राशि भेज सकते हैं। दैनिक,साप्ताहिक व मासिक मुद्रित के साथ ई-पेपर भी हैं। ई-पत्रिका या पेपर हेतु शुल्क भेजना ऐच्छिक है।

मासिक निर्दलीय वार्षिकः रु.600/- साधारण डाक (स्पीड पोस्ट रु. 1000)

संरक्षक/सलाहकार पद प्रतिष्ठार्थ

वार्षिक : रु।5000/- तीन वर्ष 11000/-

संरक्षक/सलाहकारः रु. 20000/-

नोट- दैनिक निर्दलीय प्रति अंक दो रु. (वार्षिक स्पीड पोस्ट से एक हजार रु), साप्ताहिक 'निर्दलीय' प्रति अंक पांच रु.(वार्षिक शुल्क 500 रु) साधारण डाक व्यय सहित। स्पीड पोस्ट से मंगवाना है तो 1000 रु. । साप्ताहिक व मासिक निर्दलीय दोनों स्पीड पोस्ट से मंगवाना है तो कुल राशि 2000 रु. भेजें।

व्यवस्थापकीय पता -निर्दलीय, एफ 116/7 शिवाजी नगर, भोपाल 462016

खाताधारक का नाम- निर्दलीय
Nirdaliya
बैंक-भारतीय स्टेट बैंक
शाखा- मुख्य शाखा, भोपाल 462003
खाता क्र. 30030303507
आईएफएससी कोड (कूट संकेत) -एसबीआईएन 0001308 (sbin 0001308)

दैनिक निर्दलीय, साप्ताहिक निर्दलीय और मासिक निर्दलीय की वार्षिक ग्राहकी/संरक्षक/सलाहकार सहयोग राशि हेतु दूरभाष क्र. 9424443401/8839797448 पर phone pay/Google pay के जरिए जमा कर स्क्रीन प्रिंट भेजें।

-प्रबंधक

UPI ID: nirdaliyadaily@okhdfcbank

अंतरंग

स्तंभ	शीर्षक	लेखक/ कवि/समीक्षक	पृष्ठ
आमुख	शिक्षा-भाषा - साहित्य की त्रिवेणी	कैलाश आदमी	४-७
आलेख	समन्वित दृष्टि	डॉ. सुनीता शर्मा	८-९
--,,--	शिक्षा, भाषा और साहित्य	कविता मल्होत्रा	१०
--,,--	समाज का समग्र चिंतन	चंचलिका शर्मा	११
कविता	शिक्षा, भाषा और साहित्य	डॉ. सीमा अग्रवाल	११
आलेख	देश की समृद्धि	संजीव ठाकुर	१२
--,,--	मानव जीवन में ...	डॉ.रति चौबे	१३
--,,--	भाषा का इतिहास	शशि प्रभा शाक्य	१४
--,,--	भ्राषा और साहित्य	इंदिरा किसलय	१५
--,,--	समाज का आईना	शशि पाटनी	१६
--,,--	साहित्य की शिक्षा में प्रासंगिकता	वंदना सहाय	१७
--,,--	मानव सभ्यता के विकास...	मनोज चतुर्वेदी	१८
कहानी	चीनी का पेड़	अर्चना त्यागी	१९
कविता	उड़ान	डॉ. शेषपाल सिंह	२०
आलेख	परिस्थिति सापेक्ष है...	सतीश चंद सतीश	२१
--,,--	अंग्रेज चले गए	शशि कांत गुप्ते	२२
--,,--	संस्कृति की अमर त्रिवेणी	सरिता गर्ग सरि	२३
--,,--	गुरु शिष्य परम्परा	देवेंद्र माझी	२४-२५
कविता	समंदर से धिरी ऑखें	शची श्रीवास्तव	२५
आलेख	बचपन की कोहिनूरी यादें	सनसाराम शरण	२६-२७
समाचार	साहित्य परिषद का अधिवेशन	डॉ. अनिल प्रिय रजंन शर्मा	२७
आलेख	भारतीय सांस्कृतिक विरासत	उषा सक्सेना	२८
कहानी	कोरे कागज	रानी सिंगला	२९
आलेख	आचरण में पहुंचें पुस्तकें	प्रिंस अभिशेख अज्ञानी	३०
--,,--	सनातन संस्कृति का अंत नहीं	प्रभात पांडे	३१
समीक्षा	जीवन की कविताएं: तेरहवी तक	राजकुमार गुप्ता	३२

अंतर्राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

निर्दलीय

संरक्षक/सलाहकार सुरेन्द्रनाथ दुबे, मेघा पाटकर, डॉ। पवन कुमार जैन, सोहनराज तातेड, सेठ रामनिवास गुप्ता, कविता मल्होत्रा, मधुवाला पांडे

कार्यकारी संपादक - प्रिय अभिषेक (प्रिंस अभिशेख अज्ञानी) ९८२६४२२८२० *प्रबंध सम्पादक- अशोक 'निर्मल'

मूल्य 10 रुपये/ विशेषांक 50/- वार्षिक 600/- पंजीकृत डाक 1000/- शुल्क फोन पे/जी पे 9424443401 QR CODE द्वारा या निर्दलीय (nirdaliya) के SBI मुख्य शाखा भोपाल खाता क्रमांक 30030303507 (IFSC code sbin0001308) अथवा निर्दलीय प्रकाशन के यूनियन बैंक (महाराण प्रताप नगर जोन-2 भोपाल) के खाता क्रं। 101211010000060 में जमा कर सकते हैं।

(RNI regnÐ DELHI/2006/19211) ईमेल nirdaliyadaily@gmailÐcom ई पेपर nirdaliyaÐcom

भोपाल कार्यालय/संपर्क: निर्दलीय प्रकाशन-एफ११६/७ शिवाजी नगर, भोपाल ४६२०१६ दूरसंपर्क०७५५ -२७७२४०६

स्वामी,मुद्रक-प्रकाशक-संपादक-कैलाश श्रीवास्तव 'आदमी' (9424443401/8839797448) द्वारा निर्दलीस प्रेस, भोपाल से मुद्रित, राघव भवन सी 6/72 दयालपुर), दिल्ली 110 090 से प्रकाशित।

शिक्षा-भाषा-साहित्य की त्रिवेणी में नहाइए। भारतीय संस्कृति का परचम सर्वत्र लहराइए।।

कैलाश आदमी

हमारे जीवन में हर पल उत्साह से भरा हो तो हम जीवन का वास्तविक आनंद ले सकते हैं। यह सब हमारे संस्कारों पर निर्भर करता है और अच्छे संस्कार हमें बचपन में अपने पालकों-अभिभावकों तथा गुरुओं से मिलते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान होता है।

जहां मां व्यक्ति की प्रथम गुरु होती है वहीं उसे समुचित शिक्षा विद्यालय में मिलती है। इस हेतु यह आवश्यक है कि माता-पिता या अभिभावक अपने बच्चों को ऐसे विद्यालय में दाखिला दिलाएं जहां उसे शिक्षा के साथ कौशल भी सीखने को मिले ताकि भविष्य में उसे रोजगार हेतु भटकना ना पड़े।

एक समय था जब भारत विश्व गुरु होने का दावा करता था। यह नहीं कहा जा सकता कि रामायण में वर्णित राम और गीता या महाभारत में वर्णित कृष्ण ने भारत में जन्म लिया था क्योंकि यह भी कहा जाता है कि वर्णित पुस्तकें काव्य कथा रही होंगी तथा उनमें जिन महापुरुषों का उल्लेख किया गया उनका चरित्र आदर्श होने से वे कालान्तर में देवताओं के रूप में या भगवान के रूप में पूजे जाने लगे। फिर भी उनका आदर्श चरित्र हमें आज भी प्रेरणा देता है। इन ग्रंथों में जिस गुरुकुल शिक्षा का उल्लेख किया गया है, हो सकता है वैसे गुरुकुल भारत में रहे हों। काफी समय तक देश में ऐसे गुरुकुल चलते भी रहे किंतु धीरे-धीरे उनका लोप हो गया। इसका दोष मुगल आक्रमणकारियों और अंग्रेजों को दिया जाता है जबकि इसके मूल में भारतवासी ही रहे जिनके नेतृत्वकर्ता राजा-महाराजाओं ने देश में विदेशियों को पैर जमाने का अवसर दिया।

आमतौर पर यह कहा जाता है कि मुगलकाल में उर्दू भाषा पनपी तथा जिन हिंदुओं ने इस्लाम धर्म अपनाया उन्होंने ना केवल उर्दू और फारसी जैसी भाषाएं सीखी बल्कि उन्हें आगे बढ़ाया। इसी तरह जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में अपने पैर जमाए और फिर ब्रिटेन ने भारत में शासन किया तब आरंभ में भारतवासियों को ही फौज में लिया गया तथा उनका विश्वयुद्ध में खुलकर इस्तेमाल किया। चूंकि अंग्रेजों को शासकीय कार्यालयों में सेवकों आवश्यकता थी इसलिए कॉन्वेंट क्रैंबिज जैसे विद्यालय खुले गए ताकि उनमें शिक्षा ग्रहण कर भारतवासी ब्रिटिश सेवाओं में लिए जा सकें। इस हेतु भारतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी भाषा को बढ़ावा दिया गया तथा जब भारत छोड़ो आंदोलन एवं भूमिगत आंदोलनों से भयभीत होकर अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निर्णय लिया तब तक उनका भारतीय नेतृत्व पर इतना अधिक प्रभाव हो चुका था कि उन्होंने संविधान के जरिए अंग्रेजी को ही स्वाधीन भारत की राजभाषा घोषित किया।

जैसा कि मैंने आरंभ में ही उल्लेख किया कि शिक्षा का जीवन निर्माण में सर्वाधिक महत्व होता है किंतु देश में इस तरह की शिक्षा व्यवस्था की गई जिसमें बुनियादी तालीम या शिक्षा को महत्व नहीं दिया गया जबकि स्वाधीनता आंदोलन में अग्रणी रहे महात्मा गांधी ने इस तरह की शिक्षा व्यवस्था किए जाने पर बल दिया था। इसके विपरीत स्वाधीन भारत की शिक्षा व्यवस्था में विदेशी भाषा और अभिजात्य या कुलीन वर्ग का ही ध्यान रखा गया जिससे वंचित वर्ग शिक्षा से लगभग वंचित ही रहा। वर्ष १९८६, १९९०,१९९६,२००० और २०२० में शिक्षा नीतियां बनाई गई जिससे स्पष्ट है कि देश को शिक्षा को सबसे बड़ी प्रयोगशाला के रूप में स्थान मिला। ये प्रयोग असफल रहे जिसका प्रमाण यह है कि आज भी शिक्षित कहे जाने वाले युवाओं में ३ चौथाई युवा बेरोजगारी का सामना कर रहे हैं जबकि एक तिहाई युवा ऐसे हैं जो राज्यों एवं अखिल भारतीय सेवाओं में ही नहीं विदेशों के लिए पलायन कर वहां भारत में मिली शिक्षा का लाभ उठा रहे हैं। २०२० में जब नई शिक्षा नीति की घोषणा की गई तब कहा गया कि मोदी सरकार 'एक राष्ट्र एक शिक्षा' जैसी राष्ट्र हितैषी कल्पना को साकार रूप देने जा रही है किंतु पांच वर्षों में स्थिति बद से बदतर होती गई है। विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक निजी क्षेत्रों को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसका प्रमाण यह है कि सरकारी विद्यालय बंद होते जा रहे हैं जबकि निजी विद्यालय निरंतर बढ़ रहे हैं वंचित वर्ग की स्थिति यह है

कि इस वर्ग के बच्चे सरकारी विद्यालयों में ही पढ़ते हैं किंतु उन्हें शिक्षा ग्रहण करने के बाद रोजगार के लिए भटकना पड़ता है। कहने को आरक्षित वर्ग के बच्चों के लिए रोजगार की विशेष व्यवस्था की गई है लेकिन स्थान सीमित होने से बेरोजगारी का ही सामना करना पड़ रहा है। ऐसे बच्चों को आकर्षित करने के लिए सरकारी विद्यालयों में दोपहर भोजन, पुस्तकें व अन्य सामग्री मुफ्त मुहैया कराई जाती है किंतु जैसी शिक्षा उन्हें दी जाना चाहिए वैसी शिक्षा ना दिए जाने से उन्हें निराशा का ही सामना करना पड़ता है। यह बात नहीं है कि इस वर्ग के साथ हाल ही अन्याय किया जाना शुरु हुआ हो बल्कि आजादी के बाद से ही कृषि, डेयरी, पशुपालन, पर्यावरण, विज्ञान आदि विषयों की शिक्षा सुदूर देहातों व आंचलिक स्थानों के विद्यालयों में ना दिए जाने तथा स्थानीय बोलियों व भाषा में शिक्षा की व्यवस्था ना होने से असमानता की स्थिति निर्मित हुई। मूल संविधान में कहा गया था कि आरक्षण केवल दस वर्ष के लिए दियाि जाएगा और इस अवधि में ना केवल शिक्षा बल्कि सभी क्षेत्रों में वंचित वर्ग के कल्याण एवं शिक्षा के विशेष उपबंध किए जाएंगे जिससे दस वर्ष बाद आरक्षण बढ़ाए जाने जैसी स्थिति निर्मित ना हो। विडंबना यह है कि हर दस वर्ष के बाद अगले दस वर्ष के लिए आरक्षण की अवधि बढ़ा दी जाती है किंतु नीतियां ऐसी बनाई जाती हैं जिनसे उनका लाभ वंचित वर्ग को ना मिलकर कुलीन और अभिजात्य वर्ग को ही मिल पाता है।

जहां भाषा और साहित्य का सवाल है विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक जब स्थानीय बोलियों, भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिंदी को समुचित स्थान नहीं दिया गया तो फिर नागरिकों को ना केवल शिक्षा बल्कि भाषा और साहित्य जैसे क्षेत्रों में भी पिछड़ना ही था। एक समय था जब कहा जाता था कि विश्व का प्रथम गुरु कुल ईसापूर्व ५-६ बी सदी (ईसापूर्व) तक्षशिला में स्थापित किया गया था जबकि विश्व का सबसे बड़ा आवासीय विश्वविद्यालय नालंदा में ईसापूर्व छठी सदी में स्थापित किया गया जिसमें १० हजार छात्र अध्ययन करते थे और उनके लिए २ हजार शिक्षकों की व्यवस्था की गई थी। यही नहीं ९ मंजिला ज्ञानांजलि पुस्तकालय भी छात्रों के लिए बनाया गया था जिसमें ९० लाख पुस्तकें उपलब्ध थीं।

स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मनुष्यों को शिक्षा, भाषा और साहित्य से जोड़ा गया किंतु ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया देश शिक्षा के क्षेत्र में आगे जाने की बजाए पिछड़ता ही गया। इसका सबसे बड़ा कारण यह कहा जा सकता है कि देश में रूढ़िवाद और अंधविश्वास तथा अंधश्रद्धा को सर्वाधिक महत्व दिया गया। आज स्थिति यह है कि देश में नागरिकों की संख्या १४० करोड़ से भी अधिक होते हुए भी उन्हें धर्म या मजहब आधरित ऐसी शिक्षा दी जाती है जिससे उन्हें अनुशासन में बांधा जा सके। आज कृत्रिम शिक्षा का दौर चल रहा है किंतु इस ओर ध्यान ना दिया जाकर वही पुरानी धार्मिक या मजहबी शिक्षा को ही महत्व दिया जा रहा है। देश में १,०१,२२४२० छात्रों को विद्यालयों से लेकर महाविद्यालयों तक दाखिला मिला हुआ है तथा एक करोड़ शिक्षक छात्रों का भविष्य गढ़ने हेतु नियुक्त हैं किंतु देश की जरूरत के हिसाब से पाठ्यक्रम निर्धारित ना किए जाने और विशेषकर कौशल शिक्षा के अभाव में अधिकांश छात्र शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी बेरोजगार रहते हैं और बेरोजगारी की स्थिति में उनमें से एक विशेष वर्ग को अपनी भूख शांत करने के लिए या तो अपराध की दुनिया में प्रवेश करना पड़ता है अथवा राजनेताओं के फेर में पढ़ जाते हैं। आज सरकारी विद्यालयों की स्थिति यह है कि एक लाख से अधिक विद्यालय ऐसे हैं जिन्हें एकल शिक्षक विद्यालय कहा जाता है जबकि छात्र संख्या के हिसाब से पांच से दस गुना अधिक शिक्षक होना चाहिए। इसके साथ ही हजारों की संख्या में ऐसे विद्यालय हैं जिनमें शिक्षक तो रहते हैं लेकिन छात्र नहीं। हाल ही जारी अधिकारिक आंकड़ों के अनुसार २०२४-२५ शिक्षा सत्र के दौरान देश में ८ हजार विद्यालय ऐसे पाए गए जिनमें एक भी छात्र को दाखिला नहीं दिया जा सका। शून्य दाखिला वाले विद्यालयों में २०८१७ शिक्षक कार्यरत बताए गए जिससे स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र में कितनी धांधली मची हुई है। जब चुनाव आते हैं तब शिक्षकों को छात्रों को शिक्षा देने की बजाए चुनाव कार्य में लगा दिया जाता है, वहीं जनगणना के समय भी ऐसा ही रवैया अपनाया जाता है। इसके साथ ही पंचायतें, नगरीय निकाय व अन्य शासकीय संस्थाओं में शिक्षकों को संबंद्ध कर दिया जाता है।

उपरोक्त आंकड़ों से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि स्वाधीन भारत में शिक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया जाना था किंतु उसे सबसे निचले पायदान पर रखा गया। चाहे केंद्र सरकार का बजट हो या राज्यों का, उन्हें पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा की बजाए सरकारें अन्य मदों की ओर ध्यान देती रही हैं। जब सरकारी कार्यपद्धति की आलोचना होती है तो वर्तमान शासक पुराने शासकों के मत्थे दोष मढ़ने अलावा ओर कुछ नहीं करते बल्कि हर क्षेत्र में पाश्चात्य संस्कृति और अभिजात्य संस्कृति को

ही बढ़ावा दिया जाता है।

ज्ञान केवल तथ्य और राजनकारी का संग्रह नहीं बल्कि यह जीवन को समझने, देखने और अनुभव करने का माध्यम होता है किसी व्यक्ति के लिए ज्ञान तब ही सार्थक होता है जब उसे जीवन और समाज के उत्थान या विकास में उपयोग करें। सार्थक ज्ञान हमें सही-गलत में भेद करने, निर्णय लेने और चुनौतियों का सामना करने की क्षमता प्रदान करता है। वैज्ञानिकों ने जो ज्ञान अर्जित किया वह प्रयोगशाला तक सिमित नहीं रहा बल्कि उसने समाज में तकनीक, दवा विकास का रूप ग्रहण किया। विद्वानो का यह कथन पूरी तरह तर्क संगत है कि वास्तविक ज्ञान हमें निर्णयों की जिम्मेदारी लेने, दूसरे के दृष्टिकोण को समझने और समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की शक्ति देता है। इस दृष्टि से शिक्षा का लक्ष्य केवल परीक्षा में अधिकाधिक अंक अर्जित करना ना होकर नवाचार के साथ कौशलयुक्त, विचारयुक्त और विचारशील मनुष्यों का निर्माण होना चाहिए जो वर्तमान शिक्षा पद्धति में दूर-दूर तक नहीं दिखाई देता।

कहने का देश में प्रतिवर्ष राष्ट्रीय शिक्षक दिवस मनाए जाने की परंपरा चल रही है। यह दिवस प्रतिवर्ष पांच सितंबर को देश के प्रथम उपराष्ट्रपति से राष्ट्रपति बने श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णान की स्मृति में मनाया जाता है। श्री राधाकृष्णान का जन्म ५ सितंबर १८८८ को हुआ था। वे वर्ष १९६२ में राष्ट्रपति बने। जब उनके मित्रों ने ५ सितंबर को उनका जन्मदिन मनाया तथा उन्हें आमंत्रित किया तो श्री राधाकृष्णान ने कहा कि मेरा जन्म दिन मनाने के बजाए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाना चाहिए जिसे उन्नत तथा विकासशील समान शिक्षा कहा जा सके। उनका कहना था कि जीवन की बुनियाद ज्ञान और विज्ञान में निहित है अतएव ऐसा पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए जिससे छात्रों को विदेश जाकर शिक्षा लेने की आवश्यकता ही ना पड़े।

इसके विपरीत आज स्थिति यह है कि भारत के ८ लाख से अधिक छात्र विदेशों में अध्ययन कर रहे हैं। गत वर्ष ७.६० लाख छात्र ७८ देशों में अध्ययन कर रहे थे। अधिकांश छात्र अमेकिा,कनाड़ा आदि यूरोपीय देशों में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं और शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत वहीं बस जाते हैं। यद्यपि अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति ने जो नई नीतियां अपनाई हैं उन्हें देखते हुए लगता हे कि भारतीय छात्र आगे चलकर विदेश में जाकर पढ़ने के लिए अब उतना लालायीत नहीं होंगे जितना अभी तक रहे हैं।

वास्तव में देखा जाए तो भारतवर्ष में शिक्षा की स्थिति इतनी दयनीय है कि देश अपनी आत्मा गवां चुका है अथवा पूर्णतया गंवाने की स्थिति में है। समुचित व वांछित शिक्षा ना मिल पाने के कारण देश के युवा जिन्हें जेन-जी पीढ़ी में गिना जाने लगा है, पड़ौस के श्रीलंका, म्यांमार, बांग्लादेश, नेपाल जैसे देशों में विद्रोह कर चुके हैं और भारत में भी विद्रोह की कगार पर बैठे हैं अतएव शिक्षा जैसे बुनियादी विषय की ओर वर्तमान शासकों ने ध्यान नहीं दिया और स्वयं केवल सत्ता के दोहन और भोग विलास में पड़े रहे तो यह सुनिश्चित है कि बेरोजगार पैदा करने वाली वर्तमान शिक्षा से ऊबकर नई पीढ़ी विद्रोह की सीमा तक जाने के लिए बाध्य हो सकती है। सरकार को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि देश में वर्ष १९५० में नए संविधान को लागू करते समय जो आरक्षण व्यवस्था की गई उससे भी समाज के वंचित वर्ग को लाभ नहीं मिल सका है अतएव ना केवल शिक्षा व्यवस्था बल्कि समूची व्यवस्था पर ही सभी दलों, वर्गों और निर्दलीय व निष्पक्ष कहे जाने वाले नेतृत्व को भी ध्यान देना चाहिए। उन्हें यह बताया जाना चाहिए कि सरकारी तंत्र पूरी तरह भ्रष्ट और सड़-गल चुका है तथा न्याय व्यवस्था भी लोगों को समय पर न्याय नहीं दे पा रही है। ऐसी स्थिति में पढ़ने-लिखने के बाद भी युवा पीढ़ी लूट तंत्र में ना बदल जाए। आज स्थिति यह है कि ना तो शिक्षा युवाओं को आकृष्ट कर पा रही है और ना ही कृषि व अन्य उद्योग उन्हें समाविष्ट कर पा रहे हैं तथा राजनीति भी उन्हें केवल भोग कर दूध में पड़ी मक्खी की तरह फेंकने का मनसूबा रखती है इसलिए राष्ट्रीय लूट के शिखर पर बैठे राजनेता भी देशसेवा की आड़ में कब तक युवाओं को भ्रमित कर पाएंगे। युवा आज स्वयं जान गए हैं कि उन्हें राजनेता मूर्ख बनाकर स्वयं लूट का सबसे बड़ा हिस्सा छीनकर अपने पास रख रहे हैं और आमजन के सामने जो आंकड़े पेश करते हैं वे केवल भ्रम फैलाते हैं।

समग्रतया स्थिति यह है कि देश की स्थिति आज किसी सुखी, संस्कारी और धनाडय परिवार के बहके हुए बेटे-बेटियों जैसी हो गई है जो गलत रास्ते पर जाते हैं और अनिष्ट व विनष्ट कहे जाने वाले तत्वों से मिलकर शराब, डिजिटल सट्टा और जुए जैसे मोहपाश में फंसकर ना केवल अपने परिवार बल्कि पूरे समाज और देश को ही रसातल में पहुंचाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी

संत विनोबा भावे ने वर्ष १९६८ में आचार्य कुल जैसी संस्था का गठन करते समय कहा था- यदि आचार्य अपने कर्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करें और कर्तव्य को सदैव याद रखें तो समाज में नई तालीम के माध्यम से क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। हिन्दुस्तान के लोग जानते हैं किसको याद रखना और किसको भूलना। मैंने यह कहानी कई दफा कही है, आज फिर से कह रहा हूँ। महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद मेवों (मुसलमानों) को बसाने का काम था, उसमें बाबा लगा था।

एक बार दिल्ली से २० मील दूर के नूह गाँव में सभा थी। शुक्रवार का दिन था। मस्जिद में सब मुसलमान इकट्ठा हुए थे। वहीं सभा हुई। बाबा के व्याख्यान में अकबर का नाम आया, बाबा ने उनसे पूछा- अकबर कौन था, जानते हो? बोले नहीं। फिर बाबा ने पूछा- अकबर लफ्ज जानते हो? बोले- हाँ जानते हैं अल्लाहो अकबर। अकबर बादशाह इतना बड़ा सम्राट, उसका नाम दिल्ली के नजदीक के मुसलमान जानते नहीं थे। फिर बाबा को कबीर का एक वचन सुनाना था, तो पूछा- कबीर को जानते हो ? तो बोले हाँ जानते हैं। पंडित नेहरू ने भारत का इतिहास लिखा है। उसमें लिखा है- अकबर के जमाने में तुलसीदास नाम के एक सत्पुरुष हो गए, जिनकी रामायण घर-घर में पढ़ी जाती है। पंडितजी की और बाबा की दोस्ती थी और बहुत प्रेम था। जब उनसे मुलाकात हुई तब बाबा ने उनसे पूछा- अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गए कि तुलसीदास के जमाने में अकबर हो गया? तो वे हँसने लगे, बोले- इतिहास लिखने की यही पद्धति चलती है इसलिए वैसा ही लिखा। अपना बचाव किया।

विनोबाजी ने आगे कहा कि सवाल यह है कि जमाना किसका था? तुलसीदास का था कि अकबर का था? कौन अकबर को याद करेगा? तुलसीदास को घर-घर में याद करते हैं। २००० वर्ष के बाद भी भारत एक है उसका कारण आचार्य है। यह ध्यान में रखकर आध्यात्मिक दृष्टि से चिंतन-मनन करके आपको मार्गदर्शन देना है। जल्दी-जल्दी में कर डालें, यह होगा नहीं।

बहुत लोगों को लगता है कि देश में निरक्षक, अनपढ़ लोग बहुत है। उन्हें जितना साक्षर कर सके उतना करना चाहिए। विनोबा जी कहते थे उन्हें साक्षर बनाने की बजाए 'सार्थक' बनाओ। साक्षर बनाने का मतलब इतना ही होगा कि वे अखबर पढ़ सकेंगे। इतने लोग निरक्षक हैं इसलिए हिंदुस्तान बिगड़ा हुआ नहीं है। एक दफा पवनार गांव का एक मनुष्य आया था। कहने लगा - रद्दी दीजिए। आज का रद्दी आप रख लीजिए, कल का हमें दीजिए। इसलिए कबीर ने कहा था-इतने अक्षर पढ़ लो, ढाई आखर प्रेम का।

हिंदी साहित्य के सहस्त्र वर्षों के इतिहास में संत कबीर जैसा व्यक्ति फिर कोई नहीं दिखाई दिया। वास्तव में कबीर केवल एक संत या साधु नहीं थे बल्कि वे एक शिक्षा शास्त्री और समाजसुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द अंधविश्वास, पाखंडवाद और धर्म के नाम पर चल रहे ढोंग व स्वार्थपूर्ति की निजी दुकानदारियों को आज भी ललकारता नजर आता है। कबीरदास का अनुभूत, सत्य अंधविश्वासों पर लगाए जाने वाला बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बनकर चोट भी करता है और खोट भी निकालता है।

कबीरदास ने अपनी कविता में, प्रवचनों में बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया। भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के निवेशक थे। वहीं निदेशक भी थे। उन्होंने अपनी बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसी रूप में ना केवल प्रकट किया बल्कि कहलवाया भी। भाषा तो कबीर के सामने लाचार और बेबस नजर आती थी। उस समय के साधकों में ही नहीं श्रोताओं में भी ऐसी हिम्मत नहीं कि वे उस फक्कड़ की बात को नकार सकें। वस्तुतः कबीर की भाषा में जो बल और ताकत दिखाई देता है वैसा बल और ताकत बाद के लेखकों में ही नहीं आज के लेखकों में भी दिखाई नहीं देता। वाणी के ऐसे बादशाह को हम आज भी सलामी देते हैं क्योंकि व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में आज भी कबीर का कोई सानी नहीं, प्रतिद्वंद्वी नहीं।

कालक्रम में कबीर की भाषा आज के शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्ति को भी दुरुह या कठिन जान पड़ती है जबकि कबीर ने शास्त्रीय भाषा का किंचित अध्ययन नहीं किया था फिर भी उनकी भाषा में परंपरा से चली आ रही विशेषताएं विद्वमान हैं। कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा हिंदी, खड़ी बोली, ब्रज, बुंदेलखंड़ी, पंजाबी, अरबी, फारसी आदि के शब्द मिलते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हमें देश की शिक्षानीति, भाषनीति और साहित्य के प्रति नई समझ की जरूरत है और तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास और कालीदास जैसे संतों के साहित्य में अवगाहन किए बिना नई समझ भी पैदा नहीं हो सकती। अंत में मेरी दो काव्य पंक्तियां-

çàæÿææ-ÖææŒæ-âææç ªU Ø •/Ł
ç æßð æŁ ×ð· ÙªUæßU°–

शिक्षा,भाषा और साहित्य: भारत और न्यूज़ीलैंड के संदर्भ में समन्वित दृष्टि

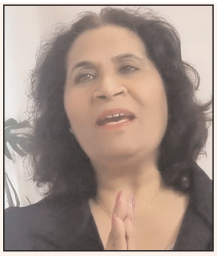

डॉ. सुनीता शर्मा

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि संस्कृति, संवेदना और पहचान की वाहक है। भारत की बहुभाषिकता और न्यूज़ीलैंड की द्विभाषिक परंपरा टे रेओ मा ओरी और इंग्लिश — दोनों ही भाषा को जीवन का अभिन्न अंग मानती हैं।

जब इन दोनों दृष्टियों का संगम होता है, तो शिक्षा में भाषा, साहित्य और सृजन का नया अध्याय खुलता है।

<u>भाषा व शिक्षा का भारतीय परिप्रेक्ष्य-</u> भारत में भाषा व शिक्षा सदैव साहित्य से जुड़ी रही है। पंचतंत्र, अकबर-बीरबल, हितोपदेश, जैसी कहानियाँ केवल भाषा नहीं सिखातीं — वे मूल्य, संवेदना और नैतिकता का परिचय कराती हैं। भारतीय परंपरा में कहानी मनुष्य को सोचने और महसूस करने की कला सिखाती है।

<u>टे व्हारिकी और भाषा का जीवन से जुड़ाव-</u>न्यूज़ीलैंड का टे व्हारिकी बच्चों की शिक्षा को उनके अनुभवों, संस्कृति और संवाद से जोड़ता है। यहाँ भाषा केवल शब्दों की श्रृंखला नहीं, बल्कि अनुभवों का ताना-बाना है — कहानी, गीत, कला और खेल के माध्यम से। माओरी और इंग्लिश दोनों भाषाएँ बच्चों की पहचान और आत्म-अभिव्यक्ति का साधन बनती हैं।

<u>समन्वय की दिशा — जब दोनों दृष्टियाँ मिलती हैं-</u>

भारत की भावनात्मक भाषा-संवेदना और न्यूज़ीलैंड की संवादात्मक शिक्षण पद्धति जब साथ आती हैं, तो शिक्षण प्रक्रिया हृदय और बुद्धि दोनों से जुड़ जाती है। मेरे स्वयं के शिक्षण में यह समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है — जहाँ मैं कहानियों, कविताओं और संवादों के माध्यम से बच्चों को सोचने, महसूस करने और सृजन करने के लिए प्रेरित करती हूं

<u>भाषा शिक्षा और साहित्य का संबंध-</u>यह संबंध शब्दों के पार जाता है। जब साहित्य जीवन में उतरता है, तो भाषा केवल सीखी नहीं जाती — जी जाती है। भारत और न्यूज़ीलैंड की शिक्षण परंपराओं के इस संगम ने यह सिद्ध किया है कि भाषा शिक्षा तभी सार्थक है, जब उसमें संस्कृति, संवेदना और रचनात्मकता का समावेश हो। प्रवासी जीवन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं होता — वह दृष्टिकोण का विस्तार है।

भारत की मिट्टी से दूर, जब मैं न्यूज़ीलैंड की धरती पर आई, तो महसूस किया कि यहाँ की हवा में भी कहानियाँ हैं। माओरी संस्कृति की लोकध्वनि और हिंदी साहित्य की संवेदना — दोनों में एक गहरी आत्मीयता है। दोनों संस्कृतियाँ अपनी भाषा के माध्यम से प्रकृति, परंपरा और मानवीय मूल्य को जीवित रखती हैं। यही साझा भाव मेरे लेखन और शिक्षण दोनों का आधार बन गया।

<u>भाषा और पहचान-</u> भाषा किसी भी संस्कृति की आत्मा होती है। हिंदी मेरे हृदय की भाषा है, जबकि माओरी भाषा टे रेओ माओ री Te Reo Maori ने मुझे सिखाया कि शब्द केवल बोलने के लिए नहीं, बल्कि महसूस करने के लिए होते हैं।

<u>कहानी- दो संस्कृतियों का पुल-</u> जब मैंने बच्चों को माओरी कथा मोई और सूर्य सुनाई, तो उनकी आँखें चमक उठीं। एक बच्चे ने कहा- यह तो हमारे हनुमान जी जैसे हैं! — (आयु 6 वर्ष)- कहानी के बाद बच्चों ने चर्चा शुरू की —

हनुमान जी सूरज को क्यों निगल गए थे?

माउई ने सूरज को क्यों बाँधा?

क्या दोनों दोस्त हो सकते हैं?

बच्चों ने अपनी कल्पना से नई कहानी गढ़ी — मोई और हनुमान जी मिलकर सूरज से कहते हैं कि धीरे चलो ताकि बच्चे खेल सकें और खेतों को उजाला मिले। यह क्षण मेरे लिए सांस्कृतिक सेतु का प्रतीक था जहाँ दो भौगोलिक संस्कृतियाँ बच्चों की कल्पना में एक भाव-संस्कृति बन गई।

सिना एंड ईल- दयालुता और संवेदनशीलता: सिना, एक दयालु लड़की, और उसका ईल बच्चों की कल्पना में जीवंत हुआ। मैं भी सिना की तरह दयालु हूँ, इसलिए ईल मेरा दोस्त बन सकता है। बच्चों ने अपनी ड्रॉइंग्स में ईल को टिकलिंग करते हुए, और सिना और उसका परिवार खुश

दिखाया। यह अनुभव बच्चों में दयालुता, संवेदनशीलता और रचनात्मकता को प्रकट करता है।

बैटल ऑफ द माउंटेंस और विन्ध्य-मेरुः जब पहाड़ बच्चों के दोस्त बने। माओरी कथा बैटल ऑफ द माउंटेंस सुनाने के बाद बच्चों की प्रतिक्रियाएँ अद्भुत थीं — यह पिहाँगा तो बहुत सुंदर है! उन्होंने कहानी को चित्रों में उतारा- पिहांगा हरे रंग में, बड़ी-बड़ी आँखों वाली, टोंगारिरो गर्व से खड़ा, तारानकी पश्चिम की ओर झुका हुआ।

बच्चों ने रंगों से कहानी को फिर से रचा। एक ने कहा-

पिहांगा तो सबसे प्यारी है, इसलिए सब पहाड़ उससे झगड़ रहे थे। जब मैंने उन्हें विन्ध्य और मेरु पर्वत की कथा सुनाई, तो उन्होंने उसमें भी वही भाव पहचाना — अगर टोंगारिरो और विन्ध्य दोस्त बन जाएँ, तो पहाड़ों की पार्टी होगी! और एक बच्चे ने तो कल्पना की- ऋषि अगस्त्य माओरी पहाड़ों के पास जाएँ और उन्हें भी झगड़ा रोकना सिखाएँ!

यह प्रतिक्रियाएँ केवल मासूम कल्पना नहीं थीं — यह संस्कृति, कला और संवाद का जीवंत संगम थीं।

<u>भाषा, संस्कृति और रचनात्मकता का संगम-</u> इन तीन कथाओं में बच्चों ने केवल कहानी नहीं सुनी, बल्कि अपनी कल्पना, संवेदना और कला के माध्यम से संस्कृति से जुड़ाव प्रदर्शित किया। मोई और हनुमान ने संस्कृति का पुल बनाया- सिना और इल ने दयालुता और मित्रता को महसूस कराया।

Battle of Mountains ने प्रकृति और पर्यावरण का सम्मान सिखाया। कहानियों से कला तक — जब शब्द रंग बन गए। बच्चों की ड्रॉइंग्स में कहानियाँ खिल उठीं। उन्होंने कहानी को केवल सुना नहीं — देखा, महसूस किया और जिया। पिहांगा मुस्कुराती हुई — हरे रंग में, टोंगारिरो गर्वीला, पर शांत, विन्ध्य झुका हुआ, लेकिन स्नेही। उनके रंगों में अहंकार और विनम्रता, प्रकृति और प्रेम, प्रतिस्पर्धा और सहअस्तित्व की पूरी शिक्षा छिपी थी। कला उनके लिए संवाद बन गई — जहाँ कहानी शब्दों से नहीं, रंगों से बोली गई।

<u>भाषा, संस्कृति और पहचान-</u> कुछ बच्चों ने माओरी शब्दों को हिंदी के साथ जोड़ा- किआ ओरा, दीदी! यह शब्द मेरे लिए केवल अभिवादन नहीं था — यह दो संस्कृतियों के बीच स्नेह का पुल था। माओरी में व्हनाऊ केवल परिवार नहीं, बल्कि समुदाय है। हिंदी में परिवार स्नेह, संस्कार और साथ का प्रतीक है। दोनों ही भाषाएँ हमें सिखाती हैं कि संबंध शब्दों से नहीं, संवेदना से बनते हैं।

<u>शिक्षा और संवेदना का उत्सव-</u> बच्चों ने इन कहानियों से जाना कि — अहंकार से बड़ी विनम्रता होती है, प्रकृति हमारी शिक्षक है, और हर संस्कृति सम्मान की पात्र है। एक शिक्षक के रूप में मैंने पाया कि जब शिक्षा संस्कृति को छू लेती है, तब सीखना जीवन का उत्सव बन जाता है। जब बच्चे माउई और हनुमान को साथ देखते हैं, विन्ध्य और टोंगारिरो को दोस्त बनाते हैं, तो वे केवल कहानियाँ नहीं गढ़ते — वे एक नई दुनिया रचते हैं, जहाँ सूरज मुस्कुराता है, पहाड़ गले मिलते हैं, और शिक्षा, साहित्य व संस्कृति एक हो जाते हैं।

<u>निष्कर्ष-</u> बहुसांस्कृतिक शिक्षा और रचनात्मक अनुभव का संगम बच्चों के साथ अनुभव ने मुझे यह समझाया कि शिक्षा केवल शब्दों और पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं रहती। जब भाषा, संस्कृति और साहित्य मिलते हैं, तो बच्चों की कल्पना स्वतंत्र रूप से उड़ान भरती है। माउई और हनुमान, टोंगारिरो और विन्ध्य — ये पात्र केवल कथाएँ नहीं, बल्कि बच्चों के लिए जीवित अनुभव बन जाते हैं। उन्होंने इन कथाओं को शब्दों में नहीं, बल्कि रंगों, आकृतियों और भावनाओं में देखा और महसूस किया।

माओरी और हिंदी लोककथाओं का संगम बच्चों में संवेदना और नैतिकता दोनों को जगाता है। उदाहरण के लिए, माउई और हनुमान जी मिलकर सूरज को समझाते हैं कि बच्चों को खेलने और खेतों को उजाले की ज़रूरत है — यह न केवल बालसुलभ हँसी का क्षण है, बल्कि दो संस्कृतियों के बीच एक भावनात्मक और नैतिक संवाद का प्रतीक भी है। इसी तरह, पिहांगा और पहाड़ों की लड़ाई ने उन्हें प्रकृति का सम्मान और सहअस्तित्व का महत्व समझाया। बच्चों की ड्रॉइंग्स — टोंगारिरो गर्व से खड़ा, पिहांगा हरी-भरी और बड़े-बड़े आँखों वाली, विन्ध्य झुका हुआ -यह केवल कला नहीं, बल्कि उनके अंदर विकसित सांस्कृतिक समझ और रचनात्मक सोच का दृश्यात्मक अनुवाद है।

शिक्षक के रूप में मेरे लिए यह अनुभव एक सांस्कृतिक पुल की तरह था। बच्चों ने न केवल दो भाषाओं और संस्कृतियों को जोड़ा, बल्कि उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से उन कथाओं का जीवन अपने भीतर उतारा। यह संगम दिखाता है कि भाषा शिक्षा तभी सार्थक होती है जब वह संवेदना, संस्कृति और सृजन के साथ जुड़ी हो।

अंततः, यह अनुभव स्पष्ट करता है कि बहुसांस्कृतिक शिक्षा बच्चों को केवल भाषाई दक्षता नहीं देती — बल्कि मानवीय मूल्य, नैतिकता, रचनात्मकता और संवेदनशीलता भी प्रदान करती है। जब शिक्षा, कहानी, कला और भाषा का संगम होता है, तब सीखना जीवन का उत्सव बन जाता है। यह केवल शिक्षण का नहीं, बल्कि जीवन और समाज की एक नई दृष्टि का प्रतीक है — जहाँ बच्चे अपनी कल्पना से दुनिया को जोड़ते हैं, और हर कहानी, हर चित्र एक नई पहचान, एक नया संवाद और एक नया सृजन जन्म देता है।

शिक्षा,भाषा और साहित्य

डॉ. कविता मल्होत्रा

सशक्त भाषा, साहित्य की साधना, व्यक्तिगत चेतना और जीवन मूल्यों की शिक्षा समाज की प्रगति का मूल आधार है।

यदि भाषा सुदृढ़ और अभिव्यंजक होगी, तो शिक्षा वास्तव में ज्ञान के भंडार खोल सकेगी। सशक्त भाषा ही जटिल विचारों और वैज्ञानिक अवधारणाओं को स्पष्टता के साथ संप्रेषित करने का माध्यम बनती है, जिससे विद्यार्थियों में तार्किक समझ और गहन चिंतन का विकास होता है। इस प्रक्रिया का अंतिम परिणाम जागरूक और संवेदनशील नागरिकों का विकास है, जो अपने समाज और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी महसूस करते हैं।

साहित्य, इस भाषाई शक्ति का सर्वोत्तम रूप है। यह केवल शब्दों का संग्रह नहीं, बल्कि अनुभवों और यथार्थ का आईना है। साहित्य हमें हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का यथार्थ दर्शन कराता है। यह प्रेम, संघर्ष, न्याय, और मानवीय भावनाओं की गहराई को इस प्रकार अभिव्यक्त करने में सक्षम बनाता है कि पाठक न केवल इतिहास से जुड़ते हैं, बल्कि वर्तमान की समस्याओं पर भी संवेदनशील तरीके से विचार करते हैं। इस प्रकार, सशक्त भाषा से युक्त साहित्य, शिक्षा को एक ऐसा आयाम देता है जो नागरिकों को केवल जानकार ही नहीं, बल्कि नैतिक और संवेदनशील भी बनाता है।

शिक्षा, भाषा और साहित्य आपस में गहन रूप से जुड़े हुए हैं। शिक्षा व्यक्ति के विकास की नींव है। यह ज्ञान, कौशल और मूल्यों को प्रदान करती है, जिससे व्यक्ति समाज में प्रभावी ढंग से योगदान कर पाता है। यह तार्किक सोच और समझ विकसित करने का प्राथमिक साधन है।

भाषा शिक्षा का माध्यम और आधार है। इसके बिना ज्ञान का संचार और संग्रह असंभव है। यह संस्कृति और विचारों को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचाती है।

साहित्य, भाषा का सर्वोत्तम रूप है। यह विभिन्न मानवीय अनुभवों, सामाजिक यथार्थों और काल्पनिक दुनिया को व्यक्त करता है। यह हमें सहानुभूति सिखाता है, विचारों की गहराई देता है, और ऐतिहासिक व सांस्कृतिक समझ को समृद्ध करता है। साहित्य पढ़ना शिक्षा का एक अनिवार्य अंग है, जो कल्पनाशीलता और अभिव्यक्ति कौशल को बढ़ाता है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जो भाषा के माध्यम से व्यक्ति की साहित्यिक समझ को समृद्ध करती है, जिससे एक जागरूक और संवेदनशील नागरिक का निर्माण होता है।

किसी भी समाज की पहचान उसके जीवन मूल्यों, नैतिक परंपराओं, कलाओं और जीवन शैली से होती है, इसलिए संस्कृति को समाज का दर्पण माना जाता है।संस्कृति शब्द दो शब्दों के योग से बना है -संस् जिसका अर्थ है उत्तम और कृति जिसका अर्थ है कार्य।

इस प्रकार संस्कृति का अर्थ है उत्तम कार्य या उत्तम संस्कार, जो मानव के लौकिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य भी है और मानव को जीवन जीने का सही तरीक़ा भी सिखाता है।

भारतीय संस्कृति विश्व की एक अनूठी विरासत है जो अनेकता में एकता के लिए जानी जाती है, जिसे विभिन्न भाषाओं, धर्मों और जातियों के संगम ने एक अद्भुत और अनुपम स्वरूप प्रदान किया है।हमारी संस्कृति केवल रीति रिवाजों का संग्रह ही नहीं बल्कि संपूर्ण जीवन का दर्शन है, जो सत्य धर्म और शांति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

भारतीय संस्कृति मुख्य रूप से भौतिकवादी न होकर आध्यात्मिक है। वेदों, उपनिषदों और भगवद्गीता में निहित दर्शन ने न केवल भारत को बल्कि समूचे विश्व को मोक्ष का रास्ता दिखाया है। योग और ध्यान भारत के आध्यात्मिक चिंतन की देन है।भारतीय जीवन मूल्यों पर आधारित रामायण और महाभारत जैसा साहित्य भारतीय आध्यात्मिकता का साक्षी है। अजंता एलोरा की गुफाएँ और ताजमहल भारतीय वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

दया,करूणा,क्षमा,प्रेम,सहिष्णुता जैसे नैतिक गुण हमें संस्कृति से ही मिलते हैं जो भारतीय शिक्षा का आधार हैं।इन गुणों से हमें बेहतर इंसान बनने और समाज में सकारात्मक भूमिका निभाने की प्रेरणा मिलती है।

भारतीय संस्कृति, मानवता और आध्यात्मिकता का बेजोड़ मिश्रण है जिससे समूची मानव जाति लाभान्वित हो सकती है। भारतीय संस्कृति कुछ आधारभूत मूल्यों पर आधारित है जैसे- वसुधैव कुटुंम्बकम् - पूरे विश्व को एक परिवार मानना, अतिथि देवो भवः - अतिथि को देवता समान मानना, कर्म प्रधानता - कर्म को महत्व देना और सहिष्णुता - सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव रखना।

भारतीय संस्कृति कला, योग, विज्ञान, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में दुनिया को अपना बहुमूल्य योगदान देती रही है। संस्कृति की नींव पर टिके मानव समाज का परम कर्तव्य है कि वह अपनी संस्कृति का संरक्षण करने में अपना योगदान भी दे और संस्कृति की विरासत को अगली पीढ़ी में हस्तांतरित भी करे, क्योंकि एक समृद्ध संस्कृति ही एक उन्नत राष्ट्र का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होती है।

(लेखिका निर्दलीय प्रकाशन की सलाहकार हैं-सं.)

-नई दिल्ली

समाज का समग्र चिंतन है शिक्षा, भाषा और साहित्य में

चंचलिका शर्मा

शिक्षा का अर्थ केवल किताबी पठन लेखन, मनन , चिंतन ही नहीं है, इसका कारण हम इस प्रकार दे सकते हैं :- प्राचीन काल में राजा, महाराजा के पुत्र गुरुकूल में रहकर किताबी ज्ञान, हिसाब गणन, अस्त्र शस्त्र का ज्ञान, गुरु से अर्जन करते थे। उस समय गुरु को आचार्य कहते थे। उस समय सामान्य रुप से बाकी लोग किताबी ज्ञान पाने के हक़दार नहीं थे।

उस समय जो जिस तरह के कार्य करते थे वे उस काम के पारंगत हुआ करते थे , अर्थात् किताबी शिक्षा नहीं पाकर भी उनमें वो गुण होते जो वे अपनी औलाद को बतौर सिखा सकते थे। उदाहरणार्थ किसान को खेत की उपज के संबंध में जितनी जानकारी होती भी है वह किताबों से नहीं प्रयोग करते करते सीखकर माहिर हो जाते थे।

धीरे धीरे समय के साथ साथ समाज में बदलाव आया। लोग किताबी ज्ञान पाठशाला, विद्यालय जाकर अर्जन करने लगे। इससे उनमें सभ्यता का विकास, संस्कारों का सही मायने में उपयोग जानने लगे थे। किंतु उस समय भी औरतों / लड़कियों को शिक्षा अर्जन करने की अनुमति न थी।

औरतें / लड़कियां घर संस्कार के कामकाज में निपुण हुआ करती थी। अपनी माता, दादी, नानी से सिलाई, कढ़ाई, बुनाई सीखने लगी थीं। यह भी किताबी ज्ञान से नहीं अभिज्ञता से सीखती थीं। समय के साथ साथ किताबी ज्ञान का विस्तार सरकारी नियम से ही लड़कियों के लिए भी होने लगा। दर असल शिक्षा का सही अर्थ किताबी ज्ञान और अभिज्ञता का सामंजस्य है।

हमारे भारत में संवैधानिक रूप से २२ भाषाओं को मान्यता मिली है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध किया गया है। बोलने के आधार पर १२१ भाषाएँ और २७० मातृभाषाएं हैं। ४५३ जीवित भाषाएँ हैं, जो कहीं न कहीं बोली व लिखी जाती हैं। आधिकारिक भाषा भाषा के अनुसार हिंदी और अंग्रेज़ी को कार्यालयीन भाषा का दर्जा दिया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३५३(१) के अनुसार देवनागरी लिपि में हिंदी को भारत संघ की भाषा हिंदी को राजभाषा घोषित किया गया है और १४ सितम्बर को प्रति वर्ष राष्ट्रीय हिंदी दिवस मनाया जाता है। किसी भी भाषा का सीधा संबंध साहित्य से जुड़ा होता है। यह प्रचलित मुहावरा हम सभी जानते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण है जिस समाज में हम रहते हैं वहाँ कई भाषा के लोग रहते हैं फिर भी आपस में भाषायी सौहार्द मौजूद है, अनेकता में भी एकता की झलक मिलती है। हम अपने भाव को लिखित रुप में व्यक्त करते हैं । इस तरह अलग अलग भाषा में अलग अलग भाषा में अलग अलग साहित्य सबके सामने उजागर होता है। बांग्ला, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, मराठी, तेलगु, कन्नड़, ओड़िया, सिंधी और भी भाषाओं के साहित्य होते हैं। अपनी मातृभाषा को सभी लोग प्रथम स्थान देते हैं क्योंकि बच्चा पहली बोली अपनी मातृभाषा में सीखता है।

उसके बाद अलग अलग भाषाओं के साहित्य को अपनी रुचि के अनुसार पढ़ते हैं। समाज का सही चित्रण साहित्य के माध्यम से ही होता है। इस तरह देखा जाये तो शिक्षा, भाषा और साहित्य की कड़ी से ही सही मायने में देश के संस्कार, संस्कृति को हम देख पाते हैं । भले ही भाषाएँ अलग अलग हैं परंतु अनेकता में एकता की गंध विराजमान है। -वडोदरा, गुजरात

शिक्षा, भाषा और साहित्य

डॉ सीमा अग्रवाल

देश हमारा अतिशय प्यारा,
जिसका इतिहास अत्यंत न्यारा।
कितने संकटों का सामना किया,
देश प्रेम भावना ने साथ दिया।
हमारा साहित्य मजबूत रहा, इसमें ज्ञान विज्ञान का भंडार रहा।
देश करता एकात्म साधना, भाषाई मेलजोल की भावना।
ऐसी शिक्षा साहित्य से मिली, साहित्य पढ़ने भाषा मिली जुली।
हमारे देश में अनेकों भाषाएं, पर सबका सार रूप शिक्षा पाएं।
प्राचीन सभ्यता व संस्कृति, जिसमें पुरुष व नारी दोनों शिक्षित।
नारी को वर चयन अधिकार, स्वयंवर रचित मिला अधिकार।
शिक्षित नारी ही ज्ञान देती, बच्चों को ऊंची शिक्षा देती।
देश में ऋषि मुनि ज्ञान देते, जहां शिक्षा पाने गुरुकुल जाते।
बाल्यावस्था से गुरुकुल भेजते, शिक्षा संग युद्ध कौशल करते।
हर बच्चे को भाषा, वीरता, गृह कार्य, निपुण बनाना महत कार्य।
जिससे देश मजबूत होगा, अपने अधिकार को जानेगा।
इस हेतु भाषा ही माध्यम है, जिसे पढ़ना लिखना जानना है।
हमारे अतीत को पढ़ना जरूरी, भाषा व शिक्षा माध्यम जरूरी।
साहित्य यदि पढ़ना व पढ़ाना है, तो हमें एक मातृभाषा बताना है।
हमारी बोलियां भाषाएं अलग हैं, पर मातृभाषा हिंदी है।
अभी हमें इतिहास, भूगोल, विज्ञान सब में,
हिंदी भाषा में लिखना व जानना सब में।
वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता जानना,
इस हेतु संस्कृत जानना व उच्च शिक्षित होना।
हमारे पुराने ऋषि गणितज्ञ थे, जिन्हें शून्य की जानकारी थी।
पृथ्वी से सूर्य की दूरी हो, साहित्य में इसका ज्ञान भी है।
हमारा साहित्य बहुत समृद्ध साहित्य रहा,
जिसे विदेशी आक्रमणकारी मिटाते रहे।
वेदों को पढ़ना व जानना, बच्चों को समुचित ज्ञान रहे।
देशवासी गौरव महसूस करें, भाषा द्वारा शिक्षा साहित्य जान रहे।

-भोपाल

देश की समृद्धि का पैमाना शिक्षा,भाषा और संस्कृति

संजीव ठाकुर

शिक्षा सदैव समाज, संस्कृति और सभ्यताओं के साथ परिवर्तनशील और प्रगतिशील रही है। यह न केवल व्यक्तिगत उन्नति का माध्यम है, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास की आधारशिला भी है। शिक्षा, ज्ञान, कला, साहित्य और संस्कृति को देश-विदेश की सीमाओं में बाँधना संभव नहीं है। यह असीमित भंडार है, जिसमें आकाशीय ऊँचाइयाँ भी शामिल हैं। न केवल इसकी गहराई को नापा जा सकता है, न ही इसकी ऊँचाई को देखा जा सकता है। शिक्षा और ज्ञान की यह विशालता मानव जीवन में अनंत संभावनाओं के द्वार खोलती है।

पूर्वी सभ्यता, विशेषकर भारतीय परंपरा, जहाँ अध्यात्म, वेद, पुराण और योग पर आधारित है, वहाँ पश्चिमी सभ्यता विज्ञान, तकनीकी नवाचार और अनछुई रहस्यमय खोजों पर आधारित है। इन दोनों सभ्यताओं ने अपने-अपने क्षेत्र में मानव जीवन को बदलने वाले अनमोल योगदान दिए हैं। उदाहरण स्वरूप, पश्चिमी विज्ञान ने मानव को चंद्रमा पर पहुँचने का अवसर दिया और आधुनिक तकनीक जैसे हवाई जहाज, इंजन, रेडियो और डिजिटल तकनीक से जीवन को सरल और उन्नत बनाया। वहीं, भारतीय ज्ञान और दर्शन ने योग, आयुर्वेद, ध्यान और जीवन मूल्यों के माध्यम से मानव जीवन में शांति, संतुलन और आत्मसाक्षात्कार की दिशा प्रदान की। इस प्रकार शिक्षा, भाषा और ज्ञान ने पूर्व और पश्चिम के बीच समन्वय स्थापित किया।

पश्चिम ने भारतीय दर्शन, आयुर्वेद और योग को अपनाकर अपनी जीवनशैली में संतुलन पाया, और भारत ने पश्चिम के विज्ञान और तकनीकी ज्ञान को अपनाकर विकास की नई ऊँचाइयों को छुआ। शिक्षा और भाषा सदैव अज्ञानता के तमस में प्रकाश की तरह कार्य करती रही है। यह नवजीवन की विकास धारा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और समाज में सतत प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है। भारतीय संस्कृति और दर्शन में जैन, बौद्ध, नव्य वेदांत और आधुनिक चिंतन ने समाज में नवयुग की कल्पना को साकार किया। वहीं पश्चिम के दार्शनिक और चिंतक जैसे प्लूटो, अरस्तु, सुकरात, कार्ल मार्क्स और लेनिन ने सामाजिक और राजनीतिक विकास के सिद्धांत प्रतिपादित किए, जिन्हें पूरी दुनिया ने अपनाया। इस प्रकार, दोनों सभ्यताओं में ज्ञान और विचारों का आदान-प्रदान निरंतर जारी रहा।

भारतीय समाज में हमेशा सुधार और नवीन युक्तियों को अपनाने की क्षमता रही है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात राजनीति और समाज में हुए परिवर्तन इसका सजीव उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए, गांधीजी ने सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को साकार किया, जबकि जवाहरलाल नेहरू ने विज्ञान और तकनीक के माध्यम से आधुनिक भारत की नींव रखी। सुभाष चंद्र बोस और बाल गंगाधर तिलक ने स्वतंत्रता संग्राम में नई ऊर्जा और दिशा प्रदान की। इन सबके प्रयासों ने भारत को विश्व पटल पर एक नया स्वरूप और पहचान दी।

पाश्चात्य ज्ञान ने हमें अपने आडंबर, अंधविश्वास और रूढ़िवादिता पर विजय पाने में मदद की। उदाहरण के लिए, वास्तु, जन्मकुंडली और अंधविश्वास से जुड़े कई प्रचलित विश्वासों को आधुनिक विज्ञान और शिक्षा के माध्यम से समाज से दूर किया जा सका। यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा और ज्ञान समाज में समग्र सुधार और नवप्रवर्तन के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं।

हमारे दैनिक जीवन में भी शिक्षा, भाषा और ज्ञान हमें यह एहसास कराते हैं कि हम अभी भी कितने पीछे हैं और कितनी दूर तक सीखने की आवश्यकता है। ज्ञान का कोई अंतिम स्रोत नहीं होता; यह एक ऐसा समृद्ध भंडार है, जिसमें जितना भी सीखना संभव है, वह निरंतर बढ़ता रहता है। अतः हमें सदैव प्रयासरत रहना चाहिए कि हम पल-पल कुछ नया सीखें—हर व्यक्ति, हर समाज, और हर सभ्यता से।

शिक्षा, भाषा और ज्ञान ही हमें समृद्ध, विकसित और परिवर्तनशील बनाते हैं। परिवर्तनशील जीवन ही नई ऊर्जा, आशा और विकास की नींव रखता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हर मानव, हर समाज और हर राष्ट्र के लिए सीखने, अपनाने और नवाचार करने की प्रक्रिया कभी समाप्त नहीं होती। यही कारण है कि शिक्षा और ज्ञान न केवल व्यक्तिगत उन्नति बल्कि समग्र मानवता के विकास के लिए अनिवार्य हैं। -

मानव जीवन में शिक्षा,भाषा और साहित्य

एड. रति चौबे

भाषा,शिक्षा,और साहित्य- तीनों का इतना गहरा व प्रगाढ़ संबंध है कि इन्हें हम अलग ही नहीं कर.सकते। ये अतीत से वर्तमान तक पूरी गहराई से जुड़ हुये हैं।

शिक्षा भाषा के ही माध्यम से ज्ञान और कौशल की गंगा बहती है, तो वहीं पर साहित्य भाषा को सौन्दर्यमयी बनाता है और उसे प्रभावशील व आर्कषक बनाता है,जिसके द्धारा हम सांस्कृतिकता को भी समझते हैं वहीं संवेदनशीलता व रचनात्मकता को चरमोत्कर्ष पे ले जाते हैं।

भाषा मनुष्य की एक पहिचान है, विचार-विमर्श और सामाजिक सम्पर्क का आधार है।

भाषा संस्कृति और सभ्यता को संरक्षित रखती है,उसको सहेजती है ताकि अगली पीढ़ी तक वह पहुंचे विलुप्तप्राय ना हो। भाषा के जरिये हम अपने ही विचारों व भावों व अनुभवों को एक-दूसरे के साथ व्यक्त कर सकते हैं।

शिक्षा ना हो तो हम भाषा को कभी व्यक्त नही कर सकते। शिक्षित होने पर ही हम अपने उद्देश्यों को व्यक्त कर सकते हैं, बोल सकते हैं, पढ़ सकते हैं और लिख सकते हैं ।शिक्षा.ही हमें भाषा की कुशलता विकसित करने में सहायक है।

यदि शिक्षा ना होगी तो भाषा का ज्ञान शून्य हैं। सांस्कृतिकता व बौद्धिकता को विकसित यही शिक्षा करती है । शिक्षा ही तो वह माध्यम है जो व्यक्ति को समाज तथा विश्व. से जोड़ के रखता है।

जहां तक साहित्य का संबंध है साहित्य तो है ही, भाषा का सबसे खूबसूरत प्रभावी रुप यह है कि भाषा साहित्य को सौन्दर्यमयी बनाती है। साहित्य हमें प्रत्येक देश की संस्कृति से परिचित करवाने में सहायक रहता है, जिससे भाषा में सांस्कृतिकता और संस्कृति को समझने की दक्षता आती है।

साहित्य छात्रों की सांस्कृतिक सृजनात्मक,साहित्यक कल्पना को प्रोत्साहित करता है, तभी कहते भी है न- जहां ना पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि। नये नये शब्दों को उत्पन्न करना व व्याकरण की संरचनायें सब साहित्य ही सिखाता है। साहित्य से ही शब्दावली भी बढ़ती है। रस, छंद, दोहे कुंडलियां आदि ना जाने कितनी प्रकार की व्याकरणयुक्त रचनायें यह साहित्य करता है,और इन्हीं शब्दरूपी आभूषणों से वह अपने रूप को भाषा को भी श्रृंगारित करता है। लेखक और साहित्यकार मानवीय संवेदनाओं, करूणा और सद्भावना को समाज में काव्य द्धारा जगाता है वो, जो अन्य विषयों में संभव नहीं है।

साहित्य का अर्थ ही है जिसमें सबका हित हो वही साहित्य है। साहित्य भाषा व शिक्षा का सबसे शक्तिशाली माध्यम है । वह केवल व्याकरण व शब्दों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि यह छात्रों, लेखकों, कवियों को मानवता की गहराई तक ले जाता है और वही अनुभव सब आत्मसात करते हैं।

साहित्य ही हमारे हृदय में ज्ञान,सोच,सहानुभूति को भी उत्पन्न करता है जिससे आगे चलकर वह समृद्ध नागरिक बनते हैं। इसलिये भाषा, शिक्षा, साहित्य हमें ना केवल भाषाई रुप से हमें सक्षम व सशक्त कर आगे बढ़ाते है,अपितु सर्वोच्च बनाने मे अपना योगदान देते हैं।

शिक्षा, साहित्य, भाषा ऐसे बहुमूल्य रत्न हैं जो मनुष्यों को धरा से आकाश तक ले जाते हैं। यह तीनों एक दूसरे के पूरक है। यदि इनमें से एक भी मानव के पास ना हो तो वह विकलांग समान है। तीनों का समन्वय और एकरूपता स्थापित कर साहित्यकार संपूर्ण मानव समाज का चहुंमुखी विकास करतें हैं। बिना इन तीनों के मानव का जीवन अधूरा है। इन तीनों के बिपासा में एकता तथा संस्कृति का विकास अवरूद्ध हो जावेगा।इतिहास अगली पीढ़ी को क्या देगा? अविकसित समाज का ही निर्माण होगा, व्यक्ति अपना आत्म-चिंतन,विश्वास ही खो देगा, क्षमतावान जावेगा और इतिहास लुप्त. हो जावेगा।संस्कृति का पतन हो जावेगा तथा सामाजिक अलगाव होगा, जीवन अव्यवस्थित हो जावेगा। अत: भाषा, शिक्षा और साहित्य को बढ़ाना देश के हर इंसान का प्रथम कर्तव्य है।

भाषा मानव जीवन की आत्मा और ज्ञान, संस्कृति व संस्कारों की संवाहक है। साहित्य और शिक्षा दोनों क्षेत्रों में इसका अत्यधिक महत्व है।

भाषा साहित्य के सृजन का माध्यम है, जो विचारों, अनुभूतियों और जीवनानुभवों को सौंदर्य और अभिव्यक्ति प्रदान करती है। यह साहित्य को सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का वाहक बनाती है।

शिक्षा भाषा शिक्षण और साहित्य की आधारशिला है, जो ज्ञान के प्रसार, विचारों की अभिव्यक्ति, संज्ञानात्मक कौशल के विकास और सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों के संवाहन में निर्णायक भूमिका निभाती है।

अंत में हम कह सकते हैं कि शिक्षा, भाषा और साहित्य ऐसा संगम है जिसका लाभ बच्चों से लेकर बड़ों तक को मिलता है।

इस प्रकार, भाषा साहित्य की आत्मा और शिक्षा की आधारशिला है, जिसके बिना दोनों का अस्तित्व अधूरा है।

-नागपुर महाराष्ट्र

भाषा का इतिहास उसके साहित्य में निहित

कवयित्री/लेखिका
शशिप्रभा शाक्य 'शशि'

मानवीय सभ्यता और संस्कृति का मूल आधार भाषा है। भाषा के बिना हम मानव की कल्पना भी नहीं कर सकते। भाषा के बिना हमारा समाज गूँगा और बहरा है।

हमारे विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम ही भाषा है इसलिए भाषा के बिना मनुष्य की कल्पना करना सिर्फ कल्पना मात्र है वास्तविकता नहीं।

मानव समाज में भाषा एक ऐसा आविष्कार है जो मनुष्य के परस्पर संवाद की मूल कड़ी है । भाषा के माध्यम से ही हम अपनी संस्कृति और इतिहास की पहचान कर सकते हैं, अपनी सृजनात्मकता और ज्ञान का प्रचार- प्रसार कर सकते हैं ।

भाषा और शिक्षा का संबंध एक दूसरे का पूरक होने जैसा है। भाषा के बिना शिक्षा का कोई अस्तित्व नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में भाषा, ज्ञान के हस्तांतरण और बौद्धिक विकास का आधार है । शिक्षा, अनुभव के आधार पर ग्रहण की जाती है और यह अनुभव भाषा के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भाषा, शिक्षण और साहित्य की आधारशिला है जो ज्ञान के प्रसार, विचारों की अभिव्यक्ति, संज्ञानात्मक कौशल के विकास और सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के संवहन में निर्णायक की भूमिका निभाती है।

साहित्य सृजन में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यदि हमारे पास अपनी भाषा नहीं है तो हम साहित्य की कल्पना भी नहीं कर सकते क्योंकि अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने के लिए भाषा का होना बहुत आवश्यक है। भाषा और साहित्य का पारस्परिक संबंध है। साहित्य के माध्यम से भाषा ही अपनी संस्कृति के अलावा विभिन्न संस्कृतियों के महत्व को समझने में मदद करती है और एक नए तरीके से इस कार्य में संलग्न भी रखती है।

भाषा,शिक्षा और साहित्य का गहरा संबंध है । साहित्य,भाषा के विकास,शब्दावली और सांस्कृतिक समाज के लिए एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में कार्य करता है। साहित्य में भाषा लेखक की भावनाओं और विचारों को व्यक्त करती है और शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान का हस्तांतरण और बौद्धिक विकास का साधन बनती है। साहित्य ही वह स्थान है जहाँ भाषा को उत्कृष्ट स्थान प्राप्त होता है । साहित्य में मानव हृदय को छूने और उसमें परिवर्तन लाने की शक्ति है ।

किसी भाषा का इतिहास उसके साहित्य में निहित होता है। साहित्य भाषा के माध्यम से मानव इतिहास,संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण करता है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान और अनुभवों को पहुँचाता है।

भाषा और साहित्य का पारस्परिक संबंध ही भाषा का वह आधार है जिसके माध्यम से साहित्य का सृजन और प्रसार होता है। साहित्य भाषा में सुंदरता और अभिव्यक्ति को जोड़ता है। साहित्य रचनात्मक और कल्पनाओं को प्रोत्साहित करता है और उसमें मानवीय करुणा, संवेदनशीलता और सौहार्द की भावना को बढ़ावा देता है ।

साहित्य किसी भाषा और उसकी संस्कृति की गहरी समझ प्रदान करता है जिससे सभी में सांस्कृतिक दक्षता में वृद्धि होती है । यह समाज और उसके तौर तरीकों और विभिन्न जीवन अनुभूतियों को समझने में मदद करता है । किसी भाषा का इतिहास उसके साहित्य में निहित होता है । साहित्य भाषा की सुंदरता के साथ-साथ आलोचनात्मक सोच,रचनात्मकता और सांस्कृतिक सहानुभूति विकसित करता है।अत: भाषा,शिक्षा और साहित्य मानव जीवन के सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इनके परस्पर सामंजस्य से मनुष्य अपने ज्ञान,,अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के साथ-साथ अपना स्वयं का, समाज का और देश का विकास करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है । भाषा,शिक्षा और साहित्य एक विकसित राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण धुरी का काम करते हैं जो विकास के साथ-साथ नवनिर्माण में भी सहायक होते हैं। विद्या और बुद्धि के मतेक्य से साहित्य निर्मित होता है।

-भोपाल

विद्या-धन

विद्या का भंडार यह,
बड़ा मनोहर जान।
इसकी वृद्धि से बनें,
मूढ़ भी चतुर सुजान।

विद्या के बिन हम सभी,
है चौपाया के समान।
जीवन जीते हैं सभी,
बने रहें अनजान।

विद्या-धन आए तभी,
बनते हैं धनवान।
बिन विद्या और ज्ञान के,
सब धन,धूल समान।

विद्या धन भंडार की,
बड़ी विचित्र है बात।
संचय इसको जो करें,
बिना देर घट जात।

विद्या का व्यय जो करें,
यह धन बढ़ता जाय।
विद्या, बुद्धि एक मत,
जीवन सफल सुहाय।

भाषा और साहित्य सांस्कृतिक धरोहर हैं

इन्दिरा किसलय

अंतरिक्ष यात्री शुभांशु शुक्ला ने कहा था अंतरिक्ष से पृथ्वी पर कोई सीमा नज़र नहीं आती। पृथ्वी हमारा साझा घर है।

हम इस सच को जानते हैं पर मानते नहीं बल्कि भाषा धर्म जाति वर्ग एवं संप्रदाय के नाम पर विभाजक रेखाएं खींचते रहते हैं।

ऐसे में भाषायी सौहार्द महज एक शब्द बनकर रह जाता है। भारत जैसे बहुलतावादी देश में एकता और संयोजक सूत्र के रूप में भाषायी सौहार्द बेहद जरूरी है,ताकि राजनीतिबाज भाषा को मसला बनाकर कुर्सी के लिये इस्तेमाल न करें।

अक्सर वोटों के ध्रुवीकरण को लेकर भाषा के समावेशी आचरण का बखान कर ,बड़ी बड़ी तकरीरों तले सच को कराहते हुए पाया गया है। भाषायी दुराग्रह कभी दक्षिण में हिन्दी को लेकर तो कभी महाराष्ट्र में मराठी को लेकर सर उठाते रहते हैं।

ताजातरीन महाराष्ट्र में उठे मराठी विवाद के परिप्रेक्ष्य में, अतीत का आईना देखा जाये तो विनोबा भावे हिन्दी को जनभाषा कहते थे। उन्होंने अपने गीता के प्रवचन भी हिन्दी में दिये। वे २० भाषाएं जानते थे। इसी तरह लोकमान्य तिलक मराठी और संस्कृत में लिखते और हिन्दी के लिए सांझी भाषा शब्द का प्रयोग करते रहे।

हिन्दी और मराठी की लिपि देवनागरी है और संस्कृति आपस में मिली हुई है। गैर हिन्दी भाषी प्रान्तों में महाराष्ट्र हिन्दी के लिए सबसे ज्यादा अनुकूल है। बालीवुड एवं महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय महाराष्ट्र में है।

अधिकांश देशों में औपचारिक हिन्दी फिल्मों ने सिखलाई है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा--सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था, आज भी है और कल भी रहेगा-गाने के इस मुखड़े से हिन्दी प्रशिक्षुओं को भूत, वर्तमान और भविष्यकाल सिखाया जाता है।

अगर किसी ट्रैवल व्लॉगर को सोमालिया या रशिया में लोग , नमस्ते और कैसे हो? पूछते हैं तो इसके पीछे हिन्दी फिल्मों का योगदान है। इस तरह भाषा के माध्यम से अपनत्व का भाव जन्म लेता है।

भाषा हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। एक पुल है जो दो दिलों में प्रेम की तरंगें उत्पन्न करता है।

मेरा आशय इतना भर है कि कोई हमारी भाषा का सम्मान करे, उसे अपनाए तो एक प्यार का रिश्ता कायम होता है। हम इसे अपने देश के संदर्भ में लें तो हर भारतीय का कर्तव्य हो जाता है कि वह अन्य प्रादेशिक भाषा बोलियों का सम्मान करे, उन्हें सीखने का प्रयास करे क्योंकि भाषा अकेली नहीं होती उसमें इतिहास, विज्ञान ,शास्त्र, कलाएं, और समूची संस्कृति समाहित होती है।

जब हम कन्नड़ तेलुगू, मलयालम ,तमिल आदि दक्षिण भारतीय भाषाएं सीखते हैं तो उपरोक्त सारी जानकारी हम तक पहुँचती है। यह राष्ट्र हित में स्वैच्छिक पहल तो है पर उससे भी ज्यादा शिक्षा नीति में परिवर्तन से ही भाषा की समस्या हल होगी। छात्रों से कहा जाए कि वे अंग्रेजी हिन्दी के अलावा कोई प्रादेशिक भाषा अनिवार्यतः सीखें।

दूसरा तरीका अनुवाद विषयक है जो तुरंत परिणामदायक है- किताबों का सरकार या साहित्यकारों द्वारा अनुवाद किया जाना।

संविधान द्वारा स्वीकृत २२ भाषाओं को परस्पर संवाद करते रहना चाहिए। आदान प्रदान से संबंध मजबूत होते हैं। यह सहृदयता ही सौहार्द को स्थापित कर सकती है।

हमें नाटक ,संगीत ,नृत्य ,कवि सम्मेलन ,सभी विधाओं में विभिन्न भाषाओं को शामिल करना होगा। उत्तराखण्ड में मडिया भाषा का संरक्षण किया जा रहा है। महाराष्ट्र में संस्कृत सप्ताह मनाया जाता है। गैर सरकारी संस्थाओं को भी इस क्षेत्र में दस्तक देनी चाहिए। देश की १९७ भाषा बोलियां संकट में हैं। इन्हें पत्र पत्रिकाओं, दूरदर्शन ,एवं सोशल मीडिया सभी माध्यमों से अभिरक्षित किया जा सकता है।

देश में जहां अंग्रेजी करियर तरक्की अन्तरराष्ट्रीय पहचान और स्टेट्स की प्रतीक बनकर राज कर रही है, अपने वर्चस्व के चलते इलाकाई भाषा बोलियों को निगल रही है। इसमें न हिन्दी को उसका स्थान मिल रहा है न प्रादेशिक भाषाओं को कोई महत्व। दक्षिण भारत की शिकायत वाजिब है कि उनकी भाषाएं क्यों नहीं सीखी जातीं जबकि वे पर्याप्त समृद्ध हैं। हिन्दी भाषियों को अपनी उदारता का परिचय देते हुये राष्ट्रीय एकता की दिशा में प्रादेशिक भाषाओं की अस्मिता का सम्मान करने की जरूरत है। इसका एक और फायदा भी है कि शोध के मुताबिक जितनी ज्यादा भाषाएं हम सीखते हैं उतना ही दिमाग सक्रिय एवं तीक्ष्ण होता है। भाषाएं सामाजिक सौहार्द की स्थापना में निस्संदेह कारगर हैं। इससे बहुभाषिक दृष्टिकोण का विकास भी होता है जो राष्ट्रीय एकता व समन्वय की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

-नागपुर

समाज का आईना हैं भाषा, शिक्षा और साहित्य

शशि पाटनी

जिस तरह सभ्य इंसान की पहचान उसकी बोली और व्यवहार से होती है उसी तरह भाषा, शिक्षा और साहित्य उन्नत समाज का आईना हैं.

ज्ञान और संवेदना की संवाहक भाषा, अनुभव और शिक्षा के सहयोग से साहित्य का आधार बनी. आध्यात्मिक गुरुओं ने अपनी तपस्या से मानवमूल्यों और लक्ष्य को परिभाषित किया. वेद उपनिषद रामायण गीता जैसे ग्रंथो का सृजन हुआ.

कबीर, रहीम, मीरा आदि कवियों ने दोहों और भजनों की रचना से संसार और जीवन की उपयोगिता से हमें रुबरु कराया। अन्य भाषाओं में भी अमूल्य साहित्य की रचना हुई.

पाषाण युग से अब तक कितने ही उतार चढाव से गुजर चुकी मानव सभ्यता में भाषा से ही प्रगति और उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ है. भाषाविदों के अनुसार जब से लेखन विधा लिपि के रुप में विकसित हुई, संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा मानी गई है. जिस समय भारत भूमि पर प्राचीन आर्य संस्कृत में ब्रह्म ज्ञान का प्रचार प्रसार कर रहे थे उसी दौर मे विश्व की अन्य मानव जातियां सांकेतिक भाषा से ही काम चला रही थी.

इतिहासकारों के अनुसार संस्कृत भाषा लगभग ४००० वर्षों से प्रचलित है और सभी भाषाओं की जननी के रूप में पहचानी जाती है. इसे देववाणी भी माना जाता है.

भाषा विज्ञान से संबंधित अनेक अध्ययन यह बताते हैं कि विश्व और भारत की अनेक भाषाओं और बोलियों में संस्कृत के शब्दों का वर्चस्व पाया जाता है.

भाषा के विकास में ध्वनि शब्द एवं अर्थ का महत्व है. ध्वनि में परिवर्तन से ही भाषा में अनेक अपभ्रंश शब्दों का निर्माण हो जाता है. संस्कृत और हिंदी की तरह अन्य भाषाओं पर ध्वनि परिवर्तन का प्रभाव पड़ा है.

कहा भी जाता है कि हर दस कोस के बाद भाषा बदल जाती है. शब्द विज्ञान की दृष्टि से भी भाषा में परिवर्तन होता रहता है. दीर्घ और ह्रस शब्दों का प्रयोग भी भाषा के अर्थ को बदलते हैं.

भारत में संस्कृत के साथ-साथ स्थानीय भाषाओं का भी महत्व रहा है. इसी के साथ आक्रांताओं की भाषा का भी स्थानीय भाषा पर प्रभाव पड़ा है. उर्दू अरबी और अंग्रेजी जैसी भाषाओं ने यहां के साहित्य को ही नहीं बल्कि संस्कृति को भी प्रभावित किया है.

भाषा के विकास में विज्ञान का भी बहुत महत्व रहा है. नई-नई तकनीकी शब्द जुडने से भाषा परिष्कृत हुई है. वाट्सेप और मीडिया ने तो भाषा का तानाबाना ही बदल दिया. राजनीति के गिरते स्तर ने मान सम्मान की भाषा को सडक पर ला दिया.

क्षेत्रीय मीडिया तो अश्लीलता की होड में लगा है. इस का व्यापक और विपरीत प्रभाव समाज के सभी वर्ग पर पड़ा है. इससे न केवल रहन सहन प्रभावित हुआ है बल्कि मानसम्मान और तहजीब का भी पतन हो रहा है.

बढती भोगवादिता ने मानवीय मूल्यों को तिलांजली दे दी है जिसका असर संवाद शैली पर झलकता है. छोटे बड़े का लिहाज तू तडाके में बदल गया है.

शासन व्यवस्था की भी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है. प्राचीन गुरुकुलों में संस्कृत भाषा समाज के सम्पन्न परिवारों के बच्चों तक सीमित थी. फिर समयानुसार उर्दू फारसी और अंग्रेजी प्रशासनिक भाषा बनी, दूसरी तरफ आम बोलचाल की भाषा भी विकसित होती रही.

लोकतंत्र में शिक्षा के प्रचार प्रसार से समाज उन्नति की ओर अग्रसर तो हुआ लेकिन नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा को उन्मादी साम्प्रदायिकता मे रंगने से समाज कलुषित हो रहा है. शिक्षा से दृष्टिकोण तो विकसित हुआ और नयी तकनीक से दुनिया मुट्ठी में भी आगयी है लेकिन नेताओ के सिर पर चढे लालच और अहंकार ने दुनिया को विध्वंस की ओर धकेल दिया है.

हर तरफ असंतोष और पीडा से कराहते लोग मीडिया की सुर्खिया है. असंयमित मानवीय व्यवहार से रुष्ट प्रकृति भी समय समय पर अतिवृष्टि, सूखा जैसी आपदाओ से अपनी नाराजगी जाहिर करती रहती है.

साहित्यकार की कलम विभिन्न विधाओ मे समाज के मौजूदा हालात को स्थाई इतिहास के रुप में सहेजती हैं. निष्पक्ष साहित्य कालजयी होता है लेकिन जब यह चाटुकारिता अथवा विद्वेष भाव से रचा हो तो समाज का भला नही कर सकता.

आज कृत्रिम बुद्धिमत्त (एआई) जैसी विकसित हो रही तकनीक मानवमस्तिष्क की सक्रियता के लिए चुनौती बन रही है . कविता हो या लेख अथवा कोई अन्य विधा, हर तरह के हर विषय पर एआई बटन दबाते ही साहित्य सृजित कर देती है.

विचारों की मौलिकता बनाये रखने के लिए सरकारें भी सजग हैं और कन्टेन्ट कानून बनाकर जेटपेट और यूट्यूब आदि को नियंत्रित कर रहे हैं. फिर भी साहित्य प्रेमियों को पुस्तकों के प्रति घटती रुचि को फिर से बढाने पर ध्यान देना होगा।

-जयपुर

साहित्य की शिक्षा में प्रासंगिकता

वंदना सहाय

शिक्षा, भाषा और साहित्य एक-दसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। भाषा शिक्षा का माध्यम है और साहित्य शिक्षा का सर्वोत्तम रूप है। शिक्षा इन दोनों के माध्यम से ज्ञान और कौशल का विकास करती है।

सबसे पहले यदि साहित्य की बात करें, तो साहित्य की परिभाषा इतनी व्यापकता लिए हुए है कि इसमें संपूर्ण मानव जीवन समाहित किया जा सकता है। साहित्य, भाषा का एक विशिष्ट रूप है जो कल्पना, रचनात्मकता और भावनाओं को व्यक्त करता है। यह भाषा के सौंदर्य और शक्ति को दर्शाता है और मानव अनुभव तथा संस्कृति को समझने का महत्वपूर्ण साधन है। यह हमें विभिन्न दृष्टिकोणों, विचारों और भावनाओं से भी अवगत कराता है।

भाषा, विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने का साधन है। यह मानव समाज का अनिवार्य हिस्सा है, जिसके बिना संवाद करना, सीखना और संस्कृति का विकास करना संभव नहीं है। यदि भाषा न हो, तो हम अपने अनुभवों का साझा नहीं कर सकते और न ही आपस में जुड़ सकते हैं।

शिक्षा, ज्ञान कौशल और दृष्टिकोण को प्राप्त करने की प्रकिया है। यह भाषा और साहित्य के माध्यम से होती है। शिक्षा हमें साक्षर बनाती है। यह हमें सोचने और सीखने में मदद करती है तथा समाज में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए तैयार करती है।

भाषा और साहित्य शिक्षा के दो महत्वपूर्ण घटक हैं, जो छात्रों को न केवल जानकारी प्राप्त करने, बल्कि उसे समझने, उसका विश्लेषण करने और उसे अपने जीवन में लागु करने करने में भी मदद करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार-जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है। दोनों विद्वानों की परिभाषाओं को सामने रख कर सामान्य बात जो सामने आती है वह यह है कि सर्वप्रथम साहित्य प्रगतिशील होता है और इसके अंतर्गत हमारे समाज से संबंधित महत्वपूर्ण सूक्ष्म और गहन ज्ञान होता है।

शिक्षा की बात की जाए तो आज के संदर्भ में इसे बेहद संकुचित अर्थों में देखा जाने लगा है। शिक्षा का अर्थ स्कूली ज्ञान तक सीमित मान लिया गया है। जबकि ज्ञानवान मनुष्यों का मानना है कि व्यक्ति की शिक्षा जीवन के नैरंतर्य के साथ-साथ चलती रहती है।

शिक्षा में साहित्य की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता है। शिक्षा और साहित्य दोनों ही मानवीय अभिवृद्धि के अत्यंत ही महत्वपूर्ण पक्ष हैं। शिक्षा के अंतर्गत जो ज्ञान सिद्धांतों द्वारा प्रदान किया जाता है, वही ज्ञान साहित्य के द्वारा रोचकता के साथ दिया जाता है।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर अपने काव्य संग्रह 'चक्रवाल' की भूमिका में लिखते हैं कि बुद्धि पर जमी पपड़ियाँ विज्ञान शोधों से टूटतीं हैं, किन्तु मनुष्य के हृदय पर की पपड़ियों को तोड़ने का काम नाटक, उपन्यास, चित्र, संगीत और कविताएँ ही करतीं हैं। साहित्य इन्हीं पपड़ियों को तोड़कर एक संवेदनशील मनुष्य को गढ़ता है, जिसकी जरूरत दिन-प्रतिदिन अमानवीय होते जा रहे समाज को है। साहित्य के द्वारा भिन्न परंपराओं, समाजों, भाषाओं और संस्कृतियों से अवगत होने का अवसर प्राप्त होता है। शिक्षा प्रमुख रूप से विद्यार्थियों को कौशल, रचनात्मकता, विचारशीलता, नवीन सिद्धांतों का ज्ञान प्रदान करती है। साहित्य इसी ज्ञान को कहानियों, नाटकों, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से विश्लेषित करता आया है।

यह कहना सही होगा कि शिक्षा और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। विष्णु शर्मा की पंचतंत्र कहानियों का उदाहरण लेकर यह बात समझी जा सकती है कि किस प्रकार बड़ी-बड़ी सीखों को रोचक घटनाओं के माध्यम से प्रदान की जाती है, जो सीधे-सपाटे तरीके से छात्रों को बतलाने पर संभवत- समझनी कठिन प्रतीत होती है।

प्रेमचंद लिखते हैं कि जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जगे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाईयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज बेकार है, उसे साहित्य कहलाने का कोई अधिकार नहीं है।

शिक्षा में साहित्य का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि इसके माध्यम से हम अपने विचारों को व्यक्त करना सीख पाते हैं। यह भाषा का कुशल प्रयोग करना सिखलाता है। साहित्य के अत्यधिक अध्ययन से संवादात्मक क्षमता का विकास होता है।

जान मिट्टी लिखते हैं- साहित्य एक जीवन शैली का निर्माण करता है। शिक्षा में साहित्य की प्रासंगिकता इस बात से और बढ़ जाती है कि वह छात्रों की मानसिक परिधि और दृष्टिकोण को विस्तार प्रदान करता है।

प्रेमचंद का कथन है कि साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं,

हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी मार लेता है। मनुष्य उपदेशों और नसीहतों से नही समझता। वह समझता है जब उसके भाव क्षेत्र को छुआ जाता है और उसके कोमल मनोभाव को संपादित किया जाता है।

किसी भी भाषा का साहित्य अपने अंतर्गत अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को समाहित किये होता है। साहित्य को केवल मनोरंजन समझना संकीर्ण मनोवृति है। साहित्य किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा होता है। साहित्य की शिक्षा छात्र-छात्राओं में स्वतंत्र सोच का बीजारोपण करने का कार्य करती है।

प्रेमचंद के शब्दों में-साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य को खोलकर सद्वृतियों को जगाता है। सत्य को रसों के द्वारा जितनी आसानी से हम प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञान और विवेक के द्वारा नहीं कर सकते। उसी भांति जैसे दुलार और चुमकार कर बच्चों को जितनी सफलता से वश में किया जा सकता है, डाँट-फटकार कर नहीं। साहित्य के द्वारा ऐसे बहुत से आदर्शात्मक चरित्रों की सृष्टि की जाती है, जो कालजयी और अनुकरणीय बन जाते हैं। उदाहरण के तौर पर हरिश्चंद्र की कथा ली जाए तो यह आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। हरिश्चंद्र का पात्र सत्य का प्रतिमान बन चुका है, जिसे आज भी आदर्श माना जाता है।

शिक्षा के अंतर्गत आने वाले विषयों के ज्ञान से मनुष्य उच्च पद और ठाठ-बाट तो पा सकता है,परंतु साहित्य जो मानवीय करुणा, संवेदनशीलता, सद्भाव प्रदान करता है वह कोई वैज्ञानिक विषय नहीं दे सकता।

शिक्षा में जब साहित्य का प्रवेश करता है, तो वह मनुष्य को उच्च चिंतन के लिए प्रेरित करता है, जीवन की वास्तविकता को लेकर संवेदनशील प्राणियों में गति और बेचैनी पैदा करता है। अंततः साहित्य की शिक्षा में प्रासंगिकता सदैव महत्वपूर्ण रही है और निरंतर महत्वपूर्ण रहेगी। – नागपुर

मानव सभ्यता के विकास के मूल आधार : शिक्षा,भाषा और साहित्य

मनोज चतुर्वेदी

भाषा, शिक्षा और साहित्य – ये तीनों तत्व मानव सभ्यता के विकास के मूल आधार हैं। भाषा मनुष्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति है, शिक्षा उन भावनाओं को दिशा देने का माध्यम है और साहित्य उन भावनाओं व विचारों की सुंदर प्रस्तुति है। जब ये तीनों एक साथ जुड़ते हैं, तभी समाज में सच्ची प्रगति संभव होती है।

भाषा मानव जीवन की आत्मा है। यह केवल संवाद का साधन नहीं, बल्कि संस्कृति, परंपरा और मानवीय संवेदनाओं का वाहक है। भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारों और अनुभवों को दूसरों तक पहुंचाता है। भाषा ही व्यक्ति को समाज से जोड़ती है और समाज को सभ्यता की दिशा देती है।

शिक्षा व्यक्ति को सोचने, समझने और विवेकपूर्ण निर्णय लेने की शक्ति देती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन के मूल्यों को समझना, समाज में सुधार लाना और मानवीयता के मार्ग पर चलना भी है।

जीवन की घटनाएँ, अनुभव और चुनौतियाँ भी हमें शिक्षा देती हैं। जो व्यक्ति इन अनुभवों से सीखकर समाज के लिए कार्य करता है, वही सच्चे अर्थों में शिक्षित कहलाता है।

साहित्य समाज का दर्पण है। यह मनुष्य के विचारों, भावनाओं और अनुभूतियों का जीवंत चित्रण करता है। एक सच्चा साहित्यकार वही होता है, जो समाज की पीड़ा, संघर्ष और आशाओं को शब्दों में ढालकर लोगों के हृदय को छू सके। श्रेष्ठ साहित्य वही होता है, जो जीवन में प्रेरणा, शांति और सकारात्मक परिवर्तन का संदेश दे।

भाषा, शिक्षा और साहित्य—ये तीनों परस्पर जुड़े हुए हैं। शिक्षा के बिना साहित्य की गहराई समझना संभव नहीं, और भाषा के बिना शिक्षा व साहित्य का अस्तित्व नहीं। जब कोई समाज भाषाई समृद्धि, शिक्षित दृष्टिकोण और उत्कृष्ट साहित्य की धारा से जुड़ता है, तभी वह वास्तविक प्रगति करता है।

आज के समय में आवश्यकता इस बात की है कि हम विभिन्न भाषाओं को सीखें, उनसे प्रेरणा लें और उनके साहित्य का अध्ययन करें। ऐसा करने से न केवल हमारा दृष्टिकोण व्यापक होगा, बल्कि समाज में मानवीय संवेदनाएँ और प्रगति की भावना भी प्रबल होगी।

अतः यह कहना उचित होगा कि भाषा, शिक्षा और साहित्य मानव जीवन की प्रगति के तीन स्तंभ हैं। ये हमें न केवल ज्ञान और अभिव्यक्ति का माध्यम देते हैं, बल्कि एक बेहतर समाज और उज्जवल भविष्य की दिशा भी दिखाते हैं। – कोलार मार्ग, भोपाल

शैक्षणिक कथा-चीनी का पेड़

अर्चना त्यागी

वार्षिक परीक्षाएं ख़त्म हुई तो दोनों बच्चों ने आफ़त मचा दी। उन्हें गांव में दादाजी के पास जाना था। मम्मी पापा ने बहुत कहा कि दादाजी और दादी शहर में उनके साथ फ्लैट पर ही रहें लेकिन दादाजी सेवानिवृत होकर अपने गांव में रहने चले गए थे।

गांव में एक मकान था और थोड़ी बहुत ज़मीन थी। उसे जोतने के लिए पहले एक नौकर रखा हुआ था। वह दादाजी के मकान पर ही रहता था और मकान तथा खेत दोनों को संभालता था। दादाजी ने गांव में ही जाने का निश्चय किया। नौकर को मकान के ऊपर बना एक कमरा रहने को दिया हुआ था। नीचे पूरे घर में दादाजी और दादी रहने लगे।

मम्मी पापा हमें अकेले घर में नहीं रहना है। आप दोनों अपने काम पर चले जाते हो और हम दोनों दिन भर वीडियो गेम खेलकर , कार्टून देखकर थक जाते हैं।

डिंगी ने उछलते हुए मुंह बनाकर कहा तो चीकू ने भी उसका साथ दिया। अब तो दादाजी गांव में रहने चले गए हैं ना, उनके साथ रहना है हमें। हमें भी खेती करनी है। हमें छुट्टियों में उनके साथ ही रहना है। वहां पर अच्छा लगता है। बहुत बड़ा घर है। खेलने के लिए पार्क में जाने की ज़रूरत ही नहीं है।

मम्मी पापा दोनों हंसने लगे। बच्चों की बात में दम था। जब भी छुट्टियां होती तो बच्चे दिन भर अकेले ही रहते थे। फिर दादाजी खेती कर सकते हैं तो उनके पोते पोती क्यों नहीं। दादी भी पोते पोतियों के स्वागत को तैयार बैठी थी। रोज़ फ़ोन पर बच्चों से पूछती थी कि छुट्टियां कब हो रही हैं ? आखिर तय हुआ कि रविवार को मम्मी पापा बच्चों के साथ कार में बैठकर गांव जायेंगे और बच्चों को कुछ दिन के लिए दादा, दादी के पास खेती करने के लिए वहीं छोड़कर आयेंगे।

मम्मी पापा एक दिन ही रुके। दोनों के ऑफिस से लगातार फ़ोन आते रहे। लैपटॉप भी साथ में लाए थे, रात में घर से भी काम ही करते रहे और अगले दिन सुबह होते ही शहर वापिस चले गए। बच्चे तब तक सोकर नहीं उठे थे।

मम्मी पापा चले गए तो बच्चों की खुशी का ठिकाना नहीं था। गांव में दादाजी के बड़े घर में दिन भर उछल कूद करने की अब छूट थी। दादाजी के साथ खेत पर जाने की भी पूरी छूट थी।

गांव में आते ही बच्चे खुशी खुशी सुबह उठ जाते और दूध पीकर दादाजी के साथ खेत पर चले जाते। छोटी खुरपी लेकर ज़मीन की खुदाई करते, खेतों में पानी देते, खाद डालते और दोपहर होने पर घर वापिस आते। दादी रोज़ बच्चों की पसंद का खाना बनाकर रखती। छाछ और गुड़ के साथ भरपेट खाना खाते।

एक दिन दादी ने बताया कि वो भी खेत पर आएंगी। दादा भी उस दिन जल्दी उठे। पड़ोस के भी एक दो लोग आए। बच्चे तुरंत उठे और उनके साथ ही चल दिए। नौकर पहले ही खेत पर चला गया था। बच्चे हैरान थे यह देखकर कि गांव में सब लोग सूरज उगने से पहले ही उठ जाते हैं।

गन्ना बोया जाना था। दादाजी हल चला रहे थे। बाकि लोग गन्ने के कटे हुए टुकड़ों को खेत में डालते जा रहे थे। दादाजी को आराम देने के लिए थोड़ी देर बाद नौकर ने हल संभाल लिया। दादाजी तब भी बैठे नहीं, सबके साथ मिलकर गन्ने के कटे हुए टुकड़ों को मिट्टी में दबाते जा रहे थे। कहीं पर गन्ना ठीक जगह पर नहीं पड़ा तो उसे उठाकर सही कर रहे थे।

दोपहर तक सब लोग काम करते रहे। फिर दादी खेत पर आई। उनके साथ पड़ोस की दो औरतें और भी थी। सबने अपने सिर पर कोई बर्तन रखा हुआ था। उनके हाथों में भी बहुत सा सामान था। पीने के पानी का घड़ा भी था। खेत के किनारे लगे पेड़ के नीचे उन्होंने सब सामान रख दिया।

खाना खाने आ जाओ सब लोग। कढ़ी चावल और रोटी। साथ में घी डालकर शक्कर भी लाई हूं। प्याज़ भी है, कढ़ी के साथ खाने के लिए।

दादी ने ज़ोर से आवाज़ लगाई। खेत में गन्ने की बुआई हो गई तो दादाजी ने बैलों को पेड़ की छाया में बांध दिया। नौकर ने उन्हें पानी पिलाया। पेड़ के नीचे दो बाल्टियों में पानी रखा हुआ था।

पानी पीकर दोनों बैल छाया में पेड़ के नीचे बैठ गए। दादाजी ने दोनों के उपर हाथ फेरा हाथ धोकर सब लोग खाना खाने बैठे। बच्चे दादाजी की थाली में ही खा रहे थे। पहली बार उन्होनें खेत में

बैठकर खाना खाया था और पहली ही बार इतने स्वादिष्ट कढ़ी चावल भी खाए थे।

खाना खाते खाते दादाजी बच्चों को गन्ने की बुआई और पौधे उगने के बारे में बता रहे थे। गन्ने के कटे हुए टुकड़ों पर बीच बीच में जो गांठें होती हैं, वही नया पौधा बनाती हैं। पौधा जैसे जैसे बड़ा होता जाता है वैसे वैसे सख्त होता जाता है। समय समय पर उसमें खाद और पानी देना पड़ता है तभी पौधे स्वस्थ रहते हैं। फ़सल पकने पर उसे जमीन से उखड़कर काट देते हैं। पत्तों को हटाकर साफ़ गन्ना निकाल लेते हैं। उसे चीनी मिल में ले जाकर बेच दिया जाता है जिसके मूल्य के बराबर रुपए बैंक में आ जाते हैं। गन्ने के रस से मिल में शक्कर, गुड़, चीनी, खांड आदि बनते हैं। शक्कर और गुड़ खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। यह मीठा होने के साथ ही खाने को पचाने में भी सहायक है।

देश में उत्तर प्रदेश वह राज्य है जिसमें सबसे अधिक गन्ना उगाया जाता है। सबसे ज्यादा चीनी मिल भी उत्तर प्रदेश में ही हैं। बच्चे यह जानकारी पाकर बहुत खुश हो रहे थे। अभी तक किताब में ही उन्होंने गन्ने की फोटो देखी थी। उन्होंने सोच लिया था कि स्कूल खुलने पर अपने सभी दोस्तों को गन्ने की खेती के बारे में बताएंगे। जब भी छुट्टी होगी अपने बोए गन्ने को देखने आयेंगे।

मैं तुम्हें लेकर आऊंगा दिखाने के लिए।

दादाजी ने कहा तो बच्चे खुशी से नाचने लगे। धूप तेज़ हो गई थी इसलिए दादी ने बच्चों के सिर पर दादाजी की टोपी रख दी। घर से दो टोपी वो लेकर आई थी। दादी और उनके साथ आई पड़ोस की औरतें घर की ओर चली। बच्चे उनके बीच में चल रहे थे ताकि धूप से बचे रहें।

दादाजी बैलों और अपने साथ आए लोगों को लेकर पीछे पीछे आ रहे थे। बच्चे खुशी में नाच रहे थे। गीत गा रहे थे। इतनी सुबह उठकर खेत पर आने से जैसे दो गुनी ऊर्ज़ा उनके शरीर में आ गई थी। घर आते ही दोनों चारपाई पर लेटे और गहरी नींद में सो गए। सपने में गन्ने के पौधे बड़े हो गए थे। और हां दोनों कूदते फांदते हुए पैदल ही शहर से गांव अपने खेत में पहुंच गए थे। बस नाम भूल गए। नींद में ही दोनों बडबडा रहे थे चीनी का पेड़।

– मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश

उड़ान

डॉ. शेषपाल सिंह 'शेष'

नवजीवन के पंख,
हमें खुद नये उगाने हैं।
उन्नति के आकाश,
हेतु सन्मार्ग बनाने हैं।

सुदृढ़ ज्ञान-विज्ञान,
उच्च-शिखरों तक ले जाना,
चढ़ने हैं सोपान,
खोजने पते - ठिकाने हैं।

रहें अध्ययनशील,
बोध सत्संगति से मिलता,
व्यापकता उपयुक्त,
नापने के पैमाने हैं।

ऊँची भरें उड़ान,
हिंद है अग्र विदेशों से,
करना अनुसंधान,
लगाने सही निशाने हैं।

जीतेंगे विद्वान,
हार जाते हैं अज्ञानी,
सीख सफलता सूत्र,
बुनें कुछ ताने-बाने हैं।

सुख-वैभव आसान,
तपस्या से ही हो पाता,
दूर करें अज्ञान,
मनोबल-यान उड़ाने हैं।

रहे न कोई विघ्न,
साथ साहस के है बढ़ना,
रहना सदा प्रसन्न,
तराने नूतन गाने हैं।

–टुण्डला रोड,आगरा

परिस्थिति सापेक्ष है शिक्षा, भाषा और साहित्य

सतीश चंद्र 'सतीश'

शिक्षा की शुरुआत तो हर जीव के जन्म के साथ ही प्राकृतिक प्रक्रिया के अंतर्गत ही हो जाती है, जीव जगत के दो आधारभूत लक्ष्य प्राण रक्षा और वंश वृद्धि हेतु तो प्रकृति हर जीव में नैसर्गिक चेतना संचरित कर लक्ष्य संपूर्ति हेतु यथोचित प्रयास सिखाती है।

प्रथम शिक्षक तो प्रकृति ही है, मानव समाज ने प्रकृति से ही सीखकर अधुनातन विकास तक अपने कदम बढ़ाए हैं। जंगल में बांसों की रगड़ से उत्पन्न हुई आग देखकर, कभी चकमक पत्थरों के टकराने से निकली चिंगारियां निरख, उसने आग जलाना सीखा, जानवरों के मांस खाकर बची हुई वसा में आग लगने से अंधेरे में हो गए प्रकाश ने उसे तैलीय दीपक बनाना सिखा दिया। नुकीले पत्थर पर अचानक गिरने से शरीर में हो गए घाव ने, उस पत्थर से भाला बनाकर शिरकत करने हेतु उसे हथियार बनाना सीखा दिया, जो विकसित होता हुआ आज नाभिकीय बमों को तक पहुँच गया है।

यायावर समाज को कृषि जीवन ने जहाँ जंगल जंगल भटकने से बचाया, खाद्य सुरक्षा दी, बही समजीवी समाज को बर्गीय रूप से विभाजित भी कर दिया। वर्गों की हित भिन्नता ने शिक्षा, भाषा और साहित्य को भी विभाजित कर दिया।

शासक बर्ग ने श्रमजीवी समाज की उत्पादन उपलब्धियों का अधिकाधिक भाग अधिगृहित कर, उत्पादक वर्गों के लिए जीवित रहने भर को छोड़ने की नीतियां बनाई, और इन नीतियों को दीर्घकाल तक अबाधित बनाए रखने हेतु जहाँ उत्पादनकर्ताओं का दगन करने का तंत्र विकशित किया, बही वह सभ्यता के उषाकाल में ही इस तथ्य, सत्य से भी परिचित हो गया था, कि किसी भी समाज को मात्र शक्ति के बल पर लंबी अवधि तक दवाएं नहीं रखा जा सकता है, ये लक्ष्य तो बृहद समाज को मानसिक रूप से गुलाम बनाकर ही साधा जा सकता है।

यही कार्य उसने मौखिक शिक्षण काल में ही, मौखिक रूप से संहिताबद्ध करना शुरू कर दिया था, हमारे भूखंड में इसे स्मृति काल के रूप में पहचान मिली है। उस समय ही शिक्षा की सीमा रेखाएँ तैयार कर दी गई थी, जिसमें उत्पादक वर्गों का प्रवेश वर्जित कर दिया गया था।

लोकभाषा को संस्कारित कर, शासक वर्ग ने अपनी शिक्षा की भाषा ऐसी तैयार करवाई, जो श्रमजीवी समाज की समझ से परे तो रही, उसे उसका उच्चारण करना भी दुरूह ही रहा। यह नीति सामंतकाल में तो लागू रही ही, आज जब दुनिया भर में जनतांत्रिक व्यवस्था संचालित हो गई है, में भी, उच्च वर्ग, छद्म स्वतंत्रता के नाम अपनी विशिष्टता बनाए रखने का हथियार बनाए हुए है। हमारे देश में तो अब कुछ वर्षों से ये नीतिगत विभाजन और अधिक तीखा हो गया है. पुरातन संस्कृति का गौरव गान करते हुए, प्राचीन भाषा और शासकवर्गीय हित साधक ग्रंथों का पुनरुत्थान का अभियान ही चल रहा है, और सामयिक व्यवस्था में प्रभुता का स्थायित्व बनाए रखने हेतु पुरातन का आलाप करने वाला वहीं वर्ग अपनी पीढ़ी को अमेरिका, यूरोप आदि देशों में ही शिक्षार्जन हेतु भेज रहा है।

अपने वंशजों के लिए समय की दौड़ में अगुआ बने रहने हेतु उत्कृष्टतम शिक्षा, और श्रमजीवियों के बच्चों हेतु सरकारी स्कूलों तक ही पहुँच को भी दुष्कर बनाए रखने की नीति, यहां वैरो भी शिक्षा के नाग अनपढ़ जैसी ही स्थिति में बने रहने की बाध्यता है, बह भी १० वीं के बाद लगभग आधे बच्चो का थक हारकर जीवन बचाने के संघर्ष मैं जूझना पड़ रहा है।

लोकभाषाएं तो आज भी अपनी क्षेत्रीय मातृभाषाएं ही है, किंतु उसे बैंक खाते से लेकर अदालती सम्मन तक उस भाषा में अंकित किया जा रहा है, जिसे सामान्य जन ना पढ़ पाता है न समझ पाता है। जांगल अवस्था (होमो इरेक्टस) से कृषि जीवन के उद्भव तक धरती के अन्य जीवों से विशिष्टता पाने वाले (होगो सैपियंस) मानव में सारा रूपांतरण उसके मस्तिष्क में तर्क शक्ति के विकास ने ही संभव बनाया था।

सामाजिक व्यवस्थाओं की स्थापना हुई, व्यवस्थागत स्वार्थी वर्ग ने संपूर्ण श्रगरत समाज को अपना सेवक बना डाला और सेवकों को अपनी व्यवसाय में ही दक्षता प्राप्त करने की सीमाओं में ही रहने हेतु, नीतिशास्त्र रचबाए गए। तर्क शक्ति को क्रूरतम दंड देकर सीमित किया गया। सेवा की उत्कृष्ट दक्षता मात्र स्वामियों ये उपभोग के लिए, पारिश्रमिक पाने की इच्छा का भी त्याग करने का उपदेश करने वाले नीतिशास्त्र का महिमागण्डन करना। संसार के समस्त सुख साधनों के उपभोक्ताओं द्वारा जगत मिथ्या के प्रवचन करना, शिक्षा के कुछ उद्धरण हैं, जो समान दिखाई पड़ते हुए भी शिक्षा को भिन्न परिस्थितियों में, विरोधी रूपों में फलित होता है।

यही कारण रहा है कि सह श्राब्दियों तक संपूर्ण मानव समाज सेवा क्षेत्रों के अतिरिक्त, विकास के नए क्षेत्रों से वंचित ही बना रहा है। पुरातन नैतिक काराओ की भितियां जब भर भराई, तो विश्व मानवता ने प्राकृत रहस्यों में तर्क शक्ति की रोशनी लेकर अभी जब इन चार सदी पूर्व प्रवेश किया, तो हजारों सालों की यथास्थिति भग्न हो गई, और धरती पर इस नए मानव के कदम उछाले मारने लगे। असंख्य सुख साधनों के निर्माण होने लगे, साथ ही नया प्रभुवर्ग भी निर्मित हो गया, जिसकी भाषा भी पूर्ववत ऐतिहासिक द्विअर्थी होकर नैतिक शिक्षा के रूप में अभिव्यक्त हो रही है।

उदाहरणस्वरूप आज की भूमंडलीकरण, उदारीकरण की शिक्षाएं शुरू में तो सर्वसमावेशी प्रतीत हुई थी, किंतु आज जब आसमान व्यापारिक समझौते, टैरिफों में वृ ?द्धि से कमजोर राष्ट्रों ने अपने क्रूर शोषण को झोलना शुरु किया तो आज की

व्यवस्था के जनोपयोगी मुखौटे नुच खुच कर तहस नहस हो गए हैं। साहित्य को कालानुसार हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं, पुरातनवादी, जो कुछ प्राचीन काल में लिखा गया है वही श्रेष्ठ है, ऐसा मानने वाले प्राचीन का पुनरुत्थान करके ही, वर्तमान समाज को सारी समस्याओं से मुक्ति दिलाने की आशा बांधते हैं।

दूसरा साहित्य का रूप है, यथास्थितिवादी, जो वर्तमान व्यवस्था को ही सामाजिक विकास की अंतिम परिणति समझाकर इस व्यवस्था में मौजूद विकृतियों को सुधारने हेतु लोकजीवन और राजसता को सद्विचारयुक्त सुझाव देता है तथा तदनुरूप साहित्य सृजित हो रहा है। उसे व्यवस्था में नहीं, व्यक्तियों और सामाजिक समूह में विकृती के कारण दिखाई देते हैं। तीसरा साहित्यिक रूप जो भविष्य निर्माण की दृष्टि से लिखा जा रहा है, इस साहित्य को क्रांतिकारी इसलिए भी कहा जाता है, की यह वर्तमान में मौजूद सामाजिक बुराइयों का मुख्य कारण व्यवस्थागत मानता है, न कि व्यक्ति और कतिपय सामाजिक समूह को । साहित्य का तो अर्थ ही होता है, जो हितकारी हो, अब विचारणीय यह है कि जब समाज में विविध वर्गों के हितों में ही टकराव है तो सर्वसमावेशी साहित्य मानवीय मूल्यों की श्रेष्ठता का चेतना में संचार करने हेतु सृजित तो होता है किंतु उसके प्रभाव क्षेत्र में मुख्यता लोक जीवन ही आता है। यह लोकजीवन सतेतर क्षेत्र ही होता है अन्यथा सता को धरा पर अंधेरा कहीं रह न जाये पढ़कर भी दीवाली पर भी एक परी तेल को तरसती लाखों झोपड़ियों से बेपरवाह मनचाहे स्थान पर लाखों दीप जलाकर उत्सव में आनंदित रहती है।

पारलौकिकता के साहित्य का कुछ ज्यादा शोर होने लगा है, जिसपर अदम गोंडवी पहले ही लिख गए हैं, गर्म रोटी की महक पागल बना देती मुझे, पारलौकिक प्रेम का मधुमास लेकर क्या करेंगे। अस्तु, परिस्थिति सापेक्ष ही होती है शिक्षा, भाषा और साहित्य।

-फरुखाबाद

व्यंग्य/
शशिकांत गुप्ते

अंग्रेज चले गए, अंग्रेजियत छोड़ गए

अंग्रेज चले गए,लेकिन अंग्रेजियत छोड़ गए। अंग्रेजियत से तात्पर्य,अंग्रेज आपस में फूट डालने वाली कुटिलता भरी नीतिहीन मानसिकता यहां छोड़ गए हैं। भारत के सच्चे देश भक्तों ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति की।

स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय क्रांति करने वालों ने फिरंगियों के द्वारा दी गई यातनाएं सही,जेल की सजा भोगी,अनेक देश भक्तों ने शहादत दी। अंग्रेजों की दुर्भाग्य पूर्ण फूट डालो राज करों की अनीति को आत्मसात करने वालों की भी कमी नहीं थी।

कुछ संगठन तो अंग्रेजों के समर्थक थे। अंग्रेजों का साथ देकर स्वतंत्रता संग्राम को कमजोर करने का षड्यंत्र कर रहे थे। कहा जाता है कि संगत का असर होता है,जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण आज बटेंगे तो कटेंगे इस कुटिलता भरे नों के प्रचार में अंग्रेजियत की बू आ रही है। इन दिनों राजनीति में एक ओर बनावटी प्रचलन की शुरुआत हो गई है। झूठे प्रलोभन युक्त वादें करो,वोट प्राप्त करो। चुनाव परिणाम के बाद झूठे वादों को जुमला कह दो।

यह समझाने के लिए मित्र ने मुझे सन १९६९ में प्रदर्शित फिल्म 'आंसू बन गए फूल' के लिए गीतकार ताज भोपाली के गीत की चुनिंदा पंक्तियां सुनाई-

इलेक्शन में मालिक के लड़के खड़े हैं
अरे इन्हें कम न समझो ये खुद भी बड़े हैं
इनके सिवाय वोट का हकदार कोन हैं?
इनसे लड़े चुनाव वो गद्दार कौन है
इस शहर भर में जितने हैं अखबार इनके हैं
(आज सारे न्यूज चैनल इनके है)
काले सफेद सैकड़ों व्यापार इनके हैं
सब अस्पताल इनके हैं बीमार इनके हैं
प्रणाम लाख बार करो इनको वोट दो
ऐसे सपूत अब है कहा अपने देश में
भगवान आ गए है इंसा के भेष में
हर चीज इनकी दास है हर शह गुलाम है
इनके पर वादों का ऐतबार करो इनको वोट दो

गीत की उपर्युक्त पंक्तियां सुनाने के बाद मित्र ने ने कहा- यह हक़ीक़त है। गीत की पंक्तियों में आज के राजनैतिक माहौल का यथार्थ वर्णित है।

राजनीति में रेवड़ियां बांटने के प्रचलन में प्रतिस्पर्धा हो रही है। अंधा बांटे रेवड़ी, फिर-फिर अपनों को दे यह कहावत प्रत्यक्ष चरितार्थ होते दिख रही है। भले ही देश पर कर्ज़ बोझ बढ़ता जाए लेकिन अपने खास,सखा द्वय की तिजौरी भरने में कोई कमी नहीं रहना चाहिए। हवाई चप्पल मतलब रबर या प्लास्टिक की चप्पल पहनने वाले को भी हवाई उड़ान करवाने का वादा स्वप्न बन कर रह गया,लेकिन हवाई अड्डे,अपने सखा को बेचने की कल्पना जरूर यथार्थ में बदलने पेशकश सफल होने का आरोप विपक्ष लगा ही रहा है? बहुत से सखा कितने खरे हैं यह उन्होंने तो देश की बैंकों को चूना लगा कर विदेशों में पलायन करके दिखा दिया। कुछ खास सखा ने तो विदेश में स्थाई निवास का इंतजाम भी कर लिया। किसी पर भी अंध विश्वास करने का नतीजा क्या होता है यह सन १९६६ में प्रदर्शित फिल्म 'देवर' के लिए गीतकार आनंद बक्षी के गीत की निम्न पंक्तियों में मिलेगा-

बहारों ने मेरा चमन लूटकर खिजां को ये इल्ज़ाम क्यों दे दिया,
के साखी ने लब से मेरे छीनकर किसी और को जाम क्यों दे दिया।
मुझे क्या पता था कभी इश्क में रकीबों को क़ासिद बनाते नहीं,
खता हो गई मुझसे क़ासिद तेरे हाथ पैगाम क्यों दे दिया।।
(क़ासिद मतलब संदेशवाहक)

-इंदौर

संस्कृति की अमर त्रिवेणी

सरिता गर्ग 'सरि'

भाषा है मानव की पहली पुकार,
मन के मौन को देती स्वर-आकार।
साहित्य है जीवन का गूढ़ गान,
दर्द भी बने जहाँ सुखमय वरदान।
शिक्षा है दीपक, उजियारा अपार,
मिटा दे जो जग में फैला अंधकार।

भाषा वह प्रथम श्वास है , जिससे मानव ने मौन को स्वर दिया।

विचारों की धरती पर जब शब्दों की पहली वर्षा हुई, तभी सभ्यता के अंकुर फूटे — संस्कृति ने रूप लिया।

साहित्य उस वर्षा का सागर है,
जहाँ भाव मोतियों-से चमकते हैं,
अनुभूतियाँ लहरों-सी उमड़ती हैं,
और शब्द, मनुष्यता का संगीत बन जाते हैं।
शिक्षा उस दीपशिखा का नाम है,
जो अज्ञान के तम को चीरकर

विवेक की लौ जलाती है —जिससे मनुष्य सोचता है, समझता है, संवरता है।

भाषा से बोलता है हृदय,
साहित्य से सुनती है आत्मा,
और शिक्षा — इन दोनों के बीच
एक उज्ज्वल सेतु बन जाती है।
इन तीनों के संग ही मानव पूर्ण है,

वही समाज सच्चे अर्थों में जीवित है,जहाँ भाषा में संस्कार,

साहित्य में संवेदना,और शिक्षा में दृष्टि हो।

भाषा, साहित्य और शिक्षा — ये केवल तीन शब्द नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के तीन शिखर हैं।भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा हम स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं, विचारों को आकार देते हैं,और भावनाओं को दिशा प्रदान करते हैं। किसी भी समाज की आत्मा उसकी भाषा में बसती है,क्योंकि वही अपने समय, संस्कृति, लोक-भावना और परंपरा का जीवंत दस्तावेज होती है।

जब भाषा में माधुर्य होता है तो संवाद में संस्कार उतर आते हैं।भाषा केवल शब्दों का संग्रह नहीं, वह संवेदनाओं का संवाहक है —जो पीढ़ियों को जोड़ती है, विचारों को एक धारा में बहाती है और व्यक्ति को समाज से, समाज को संस्कृति से जोड़ देती है।

इसी भाषा से उपजता है साहित्य,जो उस भाषा की आत्मा का शुद्धतम स्वरूप है।साहित्य मानव जीवन की समग्र व्याख्या करता है —

वह केवल कहानी या कविता नहीं,
बल्कि मनुष्य की सोच, संवेदना, करुणा और चेतना का साक्ष्य है।

साहित्य वह दर्पण है जिसमें युग का चेहरा झलकता है और वह दीपक है जो अंधेरे समय में दिशा दिखाता है।

साहित्य हमें सोचने, प्रश्न करने और महसूस करने की कला सिखाता है।

यही कारण है कि एक संवेदनशील समाज हमेशा साहित्य से पोषित होता है।

केवल भाषा और साहित्य तब तक पर्याप्त नहीं हैं जब तक उनके साथ शिक्षा न हो, जो समझने की दृष्टि दे,सत्य और असत्य में भेद करना सिखाए।शिक्षा केवल ज्ञान का अर्जन नहीं,बल्कि वह प्रक्रिया है जो मनुष्य को विवेकशील बनाती है।यह हमें शब्दों का अर्थ ही नहीं,बल्कि जीवन का अर्थ समझना सिखाती है।

शिक्षा ही वह दीप है जो भाषा और साहित्य दोनों को दिशा देता है,ताकि वे समाज के निर्माण में सार्थक भूमिका निभा सकें। जब भाषा संस्कारित हो, साहित्य संवेदनशील हो और शिक्षा मानवतामूलक हो —तब समाज का विकास केवल बाहरी नहीं,अंतरात्मा के स्तर पर भी होता है।तब व्यक्ति ज्ञानवान होने के साथ-साथ दयालु, रचनाशील और उत्तरदायी भी बनता है।आज के बदलते समय में,जब तकनीक ने संवाद को तीव्र बना दिया है,भाषा की आत्मा और साहित्य की संवेदना को संरक्षित करना और भी आवश्यक हो गया है।क्योंकि बिना भाषा के संस्कृति बिखर जाती है, बिना साहित्य के भावनाएँ सूख जाती हैं,और बिना शिक्षा के मनुष्य दिशाहीन हो जाता है। इसलिए आवश्यक है कि हम इन तीनोंधाराओं को संतुलित रूप से बहने दें —भाषा को सरल पर शुद्ध,साहित्य को गहन पर मानवीय,और शिक्षा को प्रबुद्ध पर करुणामय बनाएँ।

अंत में हम कह सकते हैं कि
भाषा बोले तो मन खिले,
साहित्य पढ़ें तो हृदय पिघले,
और शिक्षा पाएँ तो जीवन प्रकाशित हो—यही हो हमारी संस्कृति की सच्ची पहचान।

-भिवाड़ी

गुरु-शिष्य परम्परा और ग़ज़ल

देवेन्द्र माँझी

उर्दू शाइरी में गुरु-शिष्य परम्परा शुरू से ही देखने को मिलती रही है। गुरु अपने शिष्य (शागिर्द) की रचना पर इस्लाह (संशोधन) तो करता ही था, साथ ही साथ यह भी बताता था कि ग़ज़ल में क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए। वह यह भी बताता था कि कौन-से विषय ग़ज़ल के हैं और कौन-से ग़ज़ल के न होकर नज़्म के हैं। तब यह नहीं होता था जैसे आज हो रहा है।

आज नज़्म के विषयों पर धडल्ले से ग़ज़ल के शेर कहे जा रहे हैं। उनके इस कृत्य से ग़ज़ल जैसी नाज़नीन (सुकुमारी) का चेहरा कितना विकृत हो रहा है, इस पर तथाकथित नव-प्रयोगवादी ध्यान ही नहीं दे रहे हैं और अपनी धुन में ग़ज़ल की अस्मिता को दॉव पर लगा रहे हैं। कभी मुसल्सल (निरन्तर, अनवरत) ग़ज़ल के नाम पर तो कभी पुरानी सीमाओं को तोड़कर नव-प्रयोग के नाम पर ग़ज़ल की ग़ज़लीयत तो ग़ायब की ही जा रही है, ग़ज़ल को विकृत भी किया जा रहा है। जबकि मुसल्सल ग़ज़ल जैसी कोई बीमारी ग़ज़ल में कभी थी ही नहीं। मीर तक़ी मीर से लेकर साहिर लुधियानवी तक के तमाम शाइरों के दीवानों (ग़ज़ल संग्रहों) को खँगाल लीजिये कहीं आपको यह मुसल्सल ग़ज़ल की बीमारी नज़र नहीं आएगी; फिर अचानक यह आ कहाँ से गयी?

दरअस्ल, गुरु के अभाव में बेलगाम हुए शिष्य कुछ भी लिखने लगे, कोई रोकने-टोकने वाला जो नहीं रहा। गुरु की ग़ैरहाज़िरी (अनुपस्थित) में ग़ज़ल पर गीतात्मकता का रंग भी चढ़ने लगा है। गीतात्मकता के रंग में रँगी और नज़्म के विषयों पर कहे अश्आर से तैयार ग़ज़ल का चेहरा ऐसा लगने लगा है जैसे किसी महिला के चेहरे पर नवप्रयोग के नाम पर मूँछ-दाढ़ी लगाकर पेश किया जा रहा हो अथवा किसी पुरुष को उसके कानों में झुमके पहनाकर और उसकी माँग को सिंदूर से सजाकर पेश किया जाए। कल्पना कीजिए कि जब ऐसी महिला या पुरुष आपके सामने आएँगे तो कैसे लगेंगे?

आज इलेक्ट्रानिक-मीडिया की क्रांति के बाद गुरु-शिष्य की यह परम्परा समाप्त ही होती जा रही है। अब लोग सोशल-साइटों पर बने ग्रुप्स अथवा गूगल-बाबा के ज्ञान के सहारे अपना ज्ञान बढ़ा रहे हैं और शान से कह रहे हैं कि ÷अपना कोई गुरु नहीं है÷ अथवा ÷हमें किसी गुरु की ज़रूरत नहीं है÷। ऐसे लोग किसी अच्छे गुरु की शरण में जाएँ या न जाएँ, इसके लिए वे पूरी तरह से स्वतंत्र हैं मगर शाइरी को प्रदूषित करने का उनका कोई नैतिक अधिकार नहीं है। ऐसे गुरु-विहीन लोगों से पूछा जा सकता है कि पुस्तकों को पढ़ने और गूगल पर तलाशने से ही ज्ञान मिल जाता है तो लोग अपने बच्चों को मोटी-मोटी फ़ीस भरकर स्कूलों में पढ़ने के लिए क्यों भेजते हैं? ख़ैर---।

जैसा कि हम शुरू में ही बता चुके हैं कि उर्दू शाइरी में इस्लाह (संशोधन) का बहुत अधिक प्रचलन रहा है। उस्ताद बनाने और इस्लाह लेने की संस्कृति के पक्षधर कहते हैं कि शेर कहना उतना मुश्किल नहीं होता, जितना कि उसका समझना। लगन और परिश्रम के बलबूते पर किसी बह्र में शेर कहने का अभ्यास तो हो सकता है, किन्तु शेर को समझना, परखना, उसकी अच्छाई-बुराई, ख़ूबी और ऐब पर आलोचनात्मक दृष्टि पड़ना बहुत मुश्किल है। यदि नीर-क्षीर दृष्टि सौभाग्य से प्राप्त हो भी जाए तो शेर के ऐबों को निकालकर उसे चमका देना हर शाइर से संभव नहीं है। सोने के खरे-खोटे की तो परख सर्राफ कर सकता है परन्तु उसका खोट निकालकर उसे शुद्ध बनाना उसके वश का काम नहीं है, यह काम सुनार ही कर सकता है।

इस्लाह देने की क्षमता केवल छन्दशास्त्र, अलंकार साहित्य आदि में पारंगत होने से नहीं आती, अपितु उसके लिए शाइराना सूझबूझ, स्वानुभव और विवेक-बुद्धि भी अत्यन्तआवश्यक है। इस्लाह से न केवल शागिर्द ही को लाभ पहुँचता है, अपितु उस्ताद का अभ्यास भी बढ़ता है और उत्तरोत्तर उसके काव्य-कौशल में निखार आता रहता है तथा नयी-नयी बातों की जानकारी के लिए अध्ययन की भी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है ताकि वह अपने शिष्यों को इस कला में पारंगत कर सके। उस्ताद-शाइरों के मुद्रित कलाम से यह तो ज्ञात हो सकता है कि वे स्वयं क्या कहते थे और कैसा कहते थे? किन्तु उनकी समालोचक दृष्टि और सूझबूझ का अनुमान तो उन द्वारा दी गयीं इस्लाहों को देख-पढ़कर ही हो सकता है कि शागिर्द ने क्या कहा और उस्ताद ने तनिक-से संशोधन से उसे क्या-से-क्या बना दिया।

कुछ महानुभाव इस्लाह को शिष्य के लिए अहितकर मानते हैं। उनका कहना है कि इस्लाह के बन्धन से शिष्य अपने स्वयं के विचार व्यक्त नहीं कर पाता और वह उस्ताद का अंध अनुकरण करने लगता है। वह अपनी कल्पनाओं, उपमाओं को व्यक्त करने की क्षमता खोकर उस्ताद का आश्रित हो जाता है।

हमारा मानना है कि यह उनकी भ्रामक धारणा है। पक्षी, पशु, मानव सभी प्रारंभिक अवस्था में अपने से समर्थ एवं अनुभवियों से शिक्षित-दीक्षित होने के लिए बाध्य हैं। पक्षी अपने माँ-बाप से खाना-पीना और उड़ना सीखते हैं, तभी वे स्वतंत्र बिहार करने की स्थिति में आते हैं। पशु भी अपने शिशुओं को चूम-चाटकर, दूध पिलाकर अपने पाँवों पर खड़ा होना सिखाते हैं और मानव तो जन्म से मृत्यु तक अपने-परायों से कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है।

मीर, ग़ालिब, मोमिन, ज़ौक़, मुसहफ़ी और इक़बाल जैसे शाइरों ने भी अपने उस्तादों से इस्लाहें लेकर अपनी शाइरी को

निखारा; किन्तु कौन कह सकता है कि वे अपने स्वानुभव व्यक्त न करके उस्ताद का ही अनुसरण करते रहे तथा स्वावलंबी न होकर परमुखापेक्षी बने रहे? मिर्ज़ा दाग़ जैसे रंगीन और शोख़ उस्ताद के लगभग दो हज़ार शिष्य थे। जिन शिष्यों का उनके रंग से रुझान था, केवल वे ही उनके रंग में कहते रहे, किन्तु अल्लामा इक़बाल, सीमाब अकबराबादी, जिगर मुरादाबादी, जोश मलसियानी भी तो उन्हीं के शिष्य थे, वे क्यों अपनी अलग डगर चुन पाए? हमारे कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि इस्लाह तो ऐसी रौशनी है जिसका प्रकाश शिष्य को अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने में सहायक हो सकता है।

अब कोई नासमझ रौशनी से उजागर होने वाली झाड़-झंखाड़ों में अपने को फँसा ले, कुएँ में कूद पड़े या पर्वत से लुढ़क पड़े तो उस प्रकाश का क्या दोष (?), जो प्रकाश आँखों की रौशनी के लिए बहुत ज़रूरी है। खाना आदि बनाने के लिए अग्नि की अत्यन्त आवश्यकता है लेकिन कोई उसमें अपने हाथ या कपड़े जला ले तो इसमें अग्नि का क्या क़ुसूर? ऐसी स्थिति में तो उस आदमी को ही जाहिल कहा जाएगा जिसने अपने हाथ या कपड़े जलाये हैं।

एक बात और! अधकचरे उस्ताद से इस्लाह लेना किसी नीम-हकीम को अपनी नाड़ी दिखाने के समान है। इस्लाह देना बहुत बड़ा कौशल है। अतः सदैव प्रामाणिक एवं सिद्धहस्त उस्ताद से ही मशवरए-सुख़न (साहित्यिक विचार-विमर्श) लेना चाहिए ताकि शाइरी का वास्तविक मर्म समझ में आ सके और इस क्षेत्र में निपुणता प्राप्त की जा सके। योग्य उस्ताद से इस्लाह लेने विचार परिष्कृत होते हैं। शाइरी के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान होता है और अनेक रहस्यों तथा बारीकियों का पता चलता है। राज़ अहसनी स्वयं उस्तादी का मर्तबा रखते हैं। उनका यह शेर--

हमारे आशियाँ से आस्मां तक रोक ही क्या थी
बलाए-बर्क़ से महफ़ूज़ क्यों कर आशियाँ करते?

देखने में तो शेर बहुत अच्छा है किन्तु बाबाए-उर्दू जोश मलसियानी-जैसे वयोवृद्ध और सिद्धहस्त की आलोचक दृष्टि से शेर की यह तनिक-सी ख़ामी छुपी न रह सकी। बिजली आसमान से ज़मीन पर गिरती है। अतः बिजली के रवानगी के स्थल का उल्लेख पहले और मंज़िल पर पहुँचने का बाद में होना चाहिए था। अतः उन्होंने पहले मिस्रे को इस तरह परिवर्तित करा दिया--- रुकावट कौन-सी थी चर्ख़ से शाख़े-नशेमन तक (चर्ख़=आसमान। शाख़े-नशेमन=वह शाख या टहनी जिसपर घोंसला रखा हो) स्वानुभव की कमी के कारण कभी-कभी ऐसी भूलें हो जाती हैं कि अच्छे-अच्छे उस्ताद भी उन स्वाभाविकताओं को नहीं भाँप पाते। अहसन माहरहरवी मिर्ज़ा दाग़ के योग्य शिष्य थे। शिष्यों की डाक द्वारा आई हुई ग़ज़लों को अक्सर वे पढ़कर मिर्ज़ा दाग़ को सुनाते थे और जो इस्लाह उस्ताद फ़र्माते थे, उसे लिखकर शिष्यों के पास भिजवा देते थे। ऐसे दक्ष शागिर्द ने जब अपना यह शेर इस्लाह के लिए पेश किया---

किसी दिन बेख़ुदी में जा पड़े थे उनके सीने पर
बस इतनी-सी ख़ता पर हाथ कुचले उसने पत्थर से

(बेख़ुदी =बेख़बरी, अचैतन्य, कहीं और ध्यान होने की वजह से)

मिर्ज़ा दाग़ के पास बैठी हुई तवायफ़ शेर सुनकर मुस्कुराई। अहसन तो बेचारे मौलाना और ज़ाहिदे-ख़ुश्क (ऐसा नीरस संयमी अथवा विषय-विरक्त जप-तप करनेवाला, जिसके मन में विषय-भोग के प्रति ज़रा भी उदारता न हो) थे। तवायफ़ की मुस्कान का रहस्य समझना उनकी समझ से बाहर था किन्तु मिर्ज़ा दाग़ जैसा स्वानुभवी तुरन्त भाँप गया। तब फ़र्माया ÷बेख़ुदी में एक ही हाथ सीने पर पड़ना मुमकिन है, दोनों हाथ तो अनजाने में नहीं जान-बूझ कर ही पड़ते हैं। शेर को यूँ ठीक कर लीजिये---

किसी दिन बेख़ुदी में जा पड़ा था उनके सीने पर
बस इतनी-सी ख़ता पर हाथ कुचला उसने पत्थर से

मिर्ज़ा सुलेमान जाह अंजुम उस्ताद हैदरअली तबातबाई नज़्म से अपनी ग़ज़ल पर इस्लाह लेकर जा रहे थे कि रास्ते में नवाब अख़्तर महल बेगम को सलाम करने के लिए उनके दौलतख़ाने पर चले गये। बेगम साहिबा शाइरा तो न थीं, हाँ सुख़न-फ़हम (कविता यानी शाइरी के गुण-दोष समझने वाली, काव्य-मर्मज्ञ) ज़रूर थीं। ताज़ा ग़ज़ल सुनाने की फ़र्माइश पर अंजुम साहब ने इस्लाहशुदा ग़ज़ल पढ़नी शुरू की। जब यह शेर पढ़ा- *दम मेरा निकला तेरे वादे के साथ, तेरी घबराई हुई हाँ की तरह।* तो बेगम ने मुस्कुराते हुए पूछा- क्या उसने घबराकर कहा था कि हाँ फिर फ़र्माया यूँ पढ़िए- *तेरी शरमाई हुई हाँ की तरह।*

दरअस्ल, उस्ताद ने इस्लाह तो दे दी परन्तु नारी सुलभ इस अदा का अनुभव न होने से मात खा गये। शेरो-शाइरी ऐसा असीम सागर है, जिसमें अच्छे-अच्छे तैराक ग़ोते खा जाते हैं।

-द्वारका, नयी दिल्ली

समंदर से घिरी आँखें

गजल/ शची श्रीवास्तव

उदासी का सबब मत पूछ होंगी नम तिरी आँखें,
दबा तूफान सीने में हँसा करती मिरी आँखें।

बुलाता है मुझे आवाज़ देकर कोई अपना सा,
पलट कर देखने लगती सपन फिर झिरझिरी आँखें।

पसरता दीखता बस एक सूना सूना सन्नाटा,
हवाओं पर दिखे तसवीर में जैसे फिरी आँखें।

गढ़ूं खुद को लिखूं तकदीर मौजों की रवानी पर,
सिमट कर फिर बिखर जाऊं सुलगती हैं निरी आँखें।

सुनाती दासताने गम बिखरती मौज सागर की,
समंदर को समेटे खुद समंदर से घिरी आँखें।

-लखनऊ

बचपन की शिक्षा और कोहिनूरी यादें

सेनसाराम शरण

बचपन में स्कूल के दिनों में क्लास के दौरान टीचर द्वारा पेन माँगते ही हम बच्चों के बीच राकेट गति से गिरते पड़ते पहले उनकी टेबल तक पहुँच कर पेन देने की अघोषित प्रतियोगिता होती थी।

जब कभी मैम किसी बच्चे को क्लास में कापी वितरण में अपनी मदद करने पास बुला ले, तो मैडम की सहायता करने वाला बच्चा अकड़ के साथ अजीमो शाह शहंशाह बना क्लास में घूम-घूम कर कापियाँ बाँटता और बाकी के बच्चें मुँह उतारे गरीब प्रजा की तरह अपनी चेयर से न हिलने की बाध्यता लिए बैठे रहते। टीचर की उपस्थिति में क्लास के भीतर चहल कदमी की अनुमति कामयाबी की तरफ पहला कदम माना जाता था।

उस मासूम सी उम्र में उपलब्धियों के मायने कितने अलग होते थे। टीचर ने क्लास में सभी बच्चो के बीच गर हमें हमारे नाम से पुकार लिया ....., टीचर ने अपना रजिस्टर स्टाफ रूम में रखकर आने बोल दिया तो समझो कैबिनेट मिनिस्टरी में चयन का गर्व होता था।

आज भी याद है जब हम बहुत छोटे थे, तब बाज़ार या किसी समारोह में हमारी टीचर दिख जाए तो भीड़ की आड़ ले छिप जाते थे। जाने क्यों, किसी भी सार्वजनिक जगह पर टीचर को देख हम छिप जाते? कैसे भूल सकते हैं, अपने उन गणित के टीचर को जिनके खौफ से १७ और १९ का पहाड़ा याद कर पाए थे। कैसे भूल सकते हैं उन हिंदी शिक्षक को जिनके आवेदन पत्रों से ये गूढ़ ज्ञान मिला कि बुखार नही ज्वर पीड़ित होने के साथ सनम्र निवेदन कहने के बाद ही तीन दिन का अवकाश मिल सकता है।

अपने उस कक्षा शिक्षक को कैसे भूलें जो शोर मचाते बच्चों से भी ज्यादा ऊँची आवाज़ में गरजते मछली बाज़ार है क्या?.... मैंने तो मछली बाज़ार में मछलियों के ऊपर कपड़ा हिलाकर मक्खी उड़ाते खामोश दुकानदार ही देखे हैं। वो टीचर तो आपको भी बहुत अच्छे से याद होंगे जिन्होंने आपकी क्लास को स्कूल की सबसे शैतान क्लास की उपाधि से नवाज़ा था। उन टीचर को तो कतई नही भुलाया जा सकता जो होमवर्क कापी भूलने पर ये कहकर कि ... कभी खाना खाना भूलते हो? ... क्या आप भूल सकते हैं गिद्ध सी पैनी नज़र वाले अपने उस टीचर को जो बच्चों की टेबल के नीचे छिपाकर कापी के आखरी पन्नों पर चलती दोस्तों के मध्य लिखित गुप्त वार्ता को ताड़ कर अचानक खड़ा कर पूछते- तुम बताओ मैंने अभी अभी क्या पढ़ाया? क्लास में टीचर के प्रश्न पूछने पर उत्तर याद न आने पर कुछ लड़कों के हाव भाव ऐसे होते थे कि उत्तर तो जुबान पर रखा है बस जरा सा छोर हाथ नही आ रहा। ये ड्रामेबाज छात्र उत्तर की तलाश में कभी छत ताकते, कभी आँखे तरेरते, कभी हाथ झटकते। देर तक आडम्बर झेलते झेलते आखिर टीचर के सब्र का बांध टूट जाता - मेरी क्लास से निकल जाओ-

सुबह की प्रार्थना में जब हम दौड़ते भागते देर से पहुँचते तो हमारे शिक्षकों को रत्तीभर भी अंदाजा न होता था कि हम शातिर छात्रों का ध्यान प्रार्थना में कम, और आज के सौभाग्य से कौन कौन सी टीचर अनुपस्थित है, के मुआयने में ज्यादा रहता था। आपको भी वो टीचर याद हैं न, जिन्होंने ज्यादा बात करने वाले दोस्तों की सीट बदल उनकी दोस्ती कमजोर करने की साजिश की थी। वो टीचर याद आये या नही जो चाक का उपयोग लिखने में कम और बात करते बच्चों पर भाला फेक शैली में ज्यादा लाते थे? जब टीचर एग्जाम हाल में प्रश्न पत्र पकड़कर घूमते और पूछते- कोई संदेह? तब मुझे तो फिजिक्स पेपर में हमेशा एक ही डाउट रहता है कि हमें ये ग्राफ पेपर क्यों मिला है जबकि प्रश्नपत्र में ग्राफ किसमें बनाना है, मुझे तो यही नहीं समझ आ रहा। मेरा तकनीक- अपनी मूर्खता जग जाहिर ना करके चारों ओर सर घुमाकर- सब्र से चुप रहना। हर क्लास में एक ना एक बच्चा होता ही था, जिसे अपनी बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करने में विशेष महारत होती थी और ये प्रश्नपत्र थामे एक अदा से खड़े होते हैं... मैम आई हैव ए डाउट ....हमें डेफिनेशन के साथ एग्जाम्पल भी देना है क्या? उस इंटेलिजेंट की शक्ल देख खून खौलता।

परीक्षा के बाद जाँची हुई कापियों का बंडल थामे कॉपी बाँटने क्लास की तरफ आते शिक्षक साक्षात सुनामी लगते थे। ये वो दिन थे, जब कागज़ के एक पन्ने को छूकर 'खाई विद्या कसम' के साथ बोली गयी बात, संसार का अकाट्य सत्य, हुआ करता थी। मेरे लिए आज तक एक रहस्य अनसुलझा ही है कि खेल के पीरियड का ४० मिनिट छोटा और इतिहास का पीरियड वही ४० मिनिट लम्बा कैसे हो जाता था ? सामने की सीट पर बैठने के नुकसान थे तो कुछ फायदे भी थे। मसलन चाक खत्म हुई तो मैम के इतना कहते ही कि कोई भी जाओ बाजू वाली क्लास से चाक ले आना। सामने की सीट में बैठा बच्चा लपक कर क्लास के बाहर, दूसरी क्लास में मे आई कम इन कह सिंघम एंट्री करते। सरप्राइज़ चेकिंग पर हम पर कापियाँ जमा करने की बिजली भी गिरती थी, सभी बच्चों को चेकिंग के लिए कापी टेबल पर ले जाकर रखना अनिवार्य होता था। टेबल पर रखे जा रहे कापियों के ऊँचे ढेर में अपनी कापी सबसे नीचे दबा आने पर तूफ़ान को जरा देर के लिए टाल आने की तसल्ली मिलती थी हर समय एक ही डायलाग सुनते तुम लोगों का शोर प्रिंसिपल

रूम तक सुनाई दे रहा है। वो निर्दयी टीचर जो पीरियड खत्म होने के बाद का भी पाँच मिनिट पढ़ाकर हमारे लंच ब्रेक को छोटा कर देते थे। चंद होशियार बच्चे हर क्लास में होते हैं जो मैम के क्लास में घुसते ही याद दिलाने का सेक्रेटरी वाला काम करते थे। मैम कल आपने होमवर्क दिया था। जी में आता था इस आइंस्टीन की औलाद को डंडों से धुन के धर दो। तमाम शरारतों के बावजूद ये बात सौ आने सही हैं कि बरसों बाद उन टीचर्स के प्रति स्नेह और सम्मान बढ़ जाता है, अब वो किसी मोड़ पर अचानक वो मिल जाए तो बचपन की तरह अब हम छिपेंगे नही। आज भी जब मैं स्कूल या कालेज की बिल्डिंग के सामने से गुजरते हैं, तो लगता है कि एक दिन था जब ये बिल्डिंग मेरे जीवन का अभिन्न हिस्सा थी। अब उस बिल्डिंग में न मेरे दोस्त है, न हमकों पढ़ाने वाले वो टीचर्स। बच्चो को लेट एंट्री से रोकने गेट बंद करने स्टाफ भी नही जिन्हें देखते ही हम दूर से चिल्लाते थे- गेट बंद मत करो भैय्या प्लीज़ वो बूढे से बाबा भी नही है जो मैम से सिग्नेचर लेने जब जब लाल रजिस्टर के साथ हमारी क्लास में घुसते, तो बच्चों में ख़ुशी की लहर छा जाती- कल छुट्टी है। अब स्कूल के सामने से निकलने से एक टीस सी उठती है जैसे मेरी कोई बहुत अजीज चीज़ छिन गयी हो। आज भी जब उस ईमारत के सामने से निकलते हैं, तो पुराणी यादों में खो जाते हैं। स्कूल/कालेज की शिक्षा पूरी होते ही व्यवहारिकता के कठोर धरातल में, अपने उत्तरदाईत्वो को निभाते , दूसरे शहरो में रोजगार का पीछा करते, दुनियादारी से दो चार होते, जिम्मेदारियों को ढोते हमारा संपर्क उन सबसे टूट जाता है, जिनसे मिले मार्गदर्शन, स्नेह, अनुशासन, ज्ञान, ईमानदारी, परिश्रम की सीख और लगाव की असंख्य कोहिनूरी यादें किताब में दबे मोरपंख सी साथ होती है, जब चाहा खोल कर उस मखमली अहसास को छू लिया।

-जोधपुर

अखिल भारतीय साहित्य परिषद का १७ वां अधिवेशन सफल रहा

निर्दलीय के लिए
डॉ.अनिल प्रियरंजन शर्मा

अखिल भारतीय साहित्य परिषद का तीन दिवसीय 17 वां राष्ट्रीय अधिवेशन मध्य प्रदेश के रीवा शहर में कृष्णाराजकपुर सभागार में सम्पन्न हुआ। पहले दिन कार्यक्रम में देश के हर कोने से आये हुए लेखकों / साहित्यकारों का पंजीयन हुआ। इसके
बाद प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ। दोपहर बाद पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने अधिवेशन का उद्घाटन किया। सायं शोभायात्रा निकली । शोभा यात्रा में देश के हर प्रांत से आए हुए
साहित्यकारों और कलाकारों ने अपनी परंपरागत वेशभूषा में अपने अपने प्रांत के बैनर के साथ शहर परिक्रमा की। अधिवेशन में आलोचना का मुख्य बिंदु था-आत्म बोध से विश्वबोध।

अधिवेशन के द्वितीय दिन
जल प्रबंधन के प्रवक्ता देश के जाने माने जलयोद्धा पद्मश्री शिव शंकर पांडे ने भविष्य में देश में जल का कैसे प्रबंधन किया जा सकता है- विषय पर चिंतन और परामर्श साझा किया। रात्रि भोजन के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं कवि सम्मेलन संपन्न हुआ। द्वितीय दिनभी रात्रि भोजन के बाद बहुभाषिक कवि सम्मेलन आयोजित हुआ। उसमें देश के हर प्रांत से आए हुए विभिन्न भाषा भाषी कवियों ने अपने अपने प्रांत की भाषा में कविता पाठ किया। आयोजन में असम राज्य की राजधानी गौहाटी
समीपस्थ दरांग जिला से आये वरिष्ठ युवा समाज सेवी , चिकित्सक , कवि व भोपाल / नई दिल्ली स्थित निर्दलीय समाचार पत्र समूह सह प्रकाशन के मानद प्रतिनिधि डॉ.अनिल प्रियरंजन शर्मा ने भी विशेष रूप से भागीदारी की ।

हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत एवं शिक्षा, भाषा और साहित्य

ऊषा सक्सेना

भारत विश्व की सबसे पुरानी संस्कृति और सभ्यता का देश है। उस समय लेखन पद्धति न होने से मौखिक रूप में ही इनका पठन पाठन होने से इन्हें श्रुति और स्मृति के रूप में ही गुरु ष्य परम्परा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूप में ही जीवित रखा गया ।

यहां की संस्कृति ५००० वर्ष पुरानी है। इसीलिये विश्व की पहली महान संस्कृति और सभ्यता के रूप में भारत को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है । पुरा पाषाण काल के शैलचित्र भीम बेटका, उदयगिरी की गुफायें ,अजंता, एलोरा , एलिफेंटा, आदि में आज भी उनके शैल चित्र मौजूद हैं। यह उस समय की जीवन शैली को बतलाते हैं कि मानव उस समय किस प्रकार से जीवन यापन करता था । सिन्धु घाटी की सभ्यता और उसकी खुदाई में मिले उस समय के मिट्टी के पात्र खिलौने हाथी दांत के आभूषण बतलाते हैं कि उस समय समय का जीवन कैसा रहेगा ।

समय के अंतराल और प्रकृति के प्राकृतिक प्रकोप से वह नगर धरातल मे समा गये । इसके बाद वैदिक काल आया । जिसमें सरस्वती नदी के तट पर ऋषि मुनियों की तपस्थली रही और उन्होंने ही मानव जीवन कैसा हो इस पर विचार करते हुये वेदों की रचना की ।

भारत में वैदिक काल में ही वेदों की रचना होने के कारण इसे वैदिक काल कहा गया। सरस्वती नदी के तट पर उस समय के महान अन्वेषक ऋषि मुनियों ने अपनी कठिन तपस्या और साधना के द्वारा वह सब कुछ ज्ञात कर लिया था जो आज तक हम लोग नहीं खोज पाये ।

समय की धुंध ने उस ज्ञान को हमसे दूर कर दिया। फिर भी वह अपनी प्राचीन विरासत के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी अपने ज्ञान को संजोये रीति रिवाज परम्पराओं, तीज त्यौहार ,पर्व ,आदि के रूप में मौजूद है । अतिथि देवोभव नदियों को माता के रूप में पूजय मान कर उनका सम्मान करना,वृक्षों मे देवदर्शन करते हुये उनके प्रति आदर भाव यह सब हमारी उदात्त भारतीय संस्कृति की देन है जिसमें कण-कण में भगवान बसे । भौतिकवाद से दूर अध्यात्म वाद पर आधारित संस्कृति।

वैदिक काल प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग था । उस समय संस्कृतियों के उत्तरोत्तर विकास के साथ ही अनेक सभ्यतायें भी जन्म ले रही थीं । ऋग्वेद, पुराण, उपनिषद ज्ञान का वह अथाह भंडार है जिसे खोजने की प्रक्रिया में ही जीवन निकल जाता है । अनमोल मोती समुद्र की अतल गहराई में ही मिलेगा । ऋग्वेद सबसे पहला वेद है जिसमें ऋषि मुनियों ने अन्वेषक के रूप खोज करते हुये उसे जाना और तब ऋचाओं के रूप में उनकी रचना की । इसीलिये वह ऋषि कहलाये ।

ऋग्वेद को ही बाद में अध्ययन की दृष्टि से चार भागों में बाँट दिया गया - (1) ऋग्वेद (2) सामवेद (3) यजुर्वेद (4) अथर्ववेद।

ऋग्वेद के बाद यज्ञ किस प्रकार से किये जायें उनके करने की विधि और विधान क्या है, इस सबका विस्तार से यजुर्वेद में वर्णन किया गया। यज्ञ करने वाले याज्ञिक पुरोहित और आचार्य कहलाये जब कि यज्ञकर्ता यजमान कहलाये । इस तरह यजुर्वेदी ब्राह्मणों का जन्म हुआ ।

ऋग्वेद की ऋचाओं का उनके आरोहण ,अवरोहण सम और प्लुत भाव को दर्शाने के लिये गायन विद्या का जन्म हुआ- संगीत मय गान के साथ वेद पाठ करना। इस सबके लिये अर्थ चाहिये। अत: जीवन यापन की शैली को अर्थोपाजन के साथ जोड़ने के लिये उसके साधन तलाशे गये। अंत में इस तरह अथर्ववेद की रचना हुई ।

यह वैदिक काल था जो सनातन भारतीय संस्कृति का आधार बना। इनकी भाषा देव भाषा संस्कृत होने से बाद में यह जन साधारण के लिये अपठनीय हो गये जिसके आख्यान के रूप में बाद मे पुराण और उपनिषद आये तथा रामायण और महाभारत की रचना स्थानीय मिली-जुली भाषा और संस्कृत में हुई जिनमें हमारी सभ्यता और संस्कृति परिलक्षित है । वैदिक काल के बाद उत्तरोत्तर विकास में भारत भूमि पर समय के अनुसार विभिन्न संस्कृतियां विकसित हुई जिसमें भाषाओं के विकास के साथ शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भी उन्नति परिलक्षित हुई।

-मुंबई

कोरे कागज

कहानी/रानी सिंगला

विजय ने लगभग चिल्लाते हुए स्वर में रानो को आवाज़ लगाई। आटा सने हाथों से रानो रसोई घर से भागती हुई आई और उसके सामने हाज़िर हो गई। विजय बोला मुझे ये कमीज़ नहीं पहनना कोई दूसरा निकालो जब कि रानो ने उस से पूछ कर ही कपड़े निकाले थे वो ये भी नहीं बोल सकती थी कि आप ख़ुद निकाल लो जब कि वो कपड़ों की अलमारी के पास खड़ा था। अपने आप नहीं निकाल सका रानो भागती हुई गई, हाथ धोए और कमीज़ निकाल कर दी।

पति सरकारी नौकरी में था, समय का पाबंद भी। उसे हर सामान जैसे इस्त्री किए कपड़े, पॉलिश किए , जूते, खाना सब समय पर चाहिए। मदद के नाम पर हुक्म चलाना आता था।

रानो ने जैसे तैसे कर के विजय को काम पर भेजा और सकूं की सांस ली। पता नहीं कब उसका मन पीछे को भागने लगा। जब रानो १४ साल की थी तो उसे शेरो शायरी का शौक लग गया। उसने मां बाप से छुप कर लिखना शुरू किया। कहानियां भी लिखती। उनके घर पंजाबी पत्रिका आती थी।

रानो ने बिना किसी को बताए अपनी कहानी अपने (ताख़ुलिस) नाम (बेदिल) से पत्रिका में भेज दी और कहानी प्रकाशित हो गई।

उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं था पर वो अपनी खुशी किसी से भी बांट नही सकती थी। उसने अपनी रचनाएँ डायरी में लिखी जिन्हें जान से भी ज्यादा हिफाज़त से रखती थी।

१६ साल की उम्र में विजय से शादी हो गई जो कि रानो से १० साल बड़ा था। जब रानो शादी कर के विजय के घर आई तो उसके सारे सपने चूर चूर हो गए क्योंकि विजय को ये सब पसंद नहीं था कि रानो कविता-कहानियां आदि लिखे।

रानो को शिक्षा दी गई थी कि पति परमेश्वर होता है उसकी खुशी में ही तेरी खुशी है। उसने अपने आप को नए माहौल में ढाल लिया। भगवान जी ने शादी के २ साल में २ पुत्र रत्न रानो की गोद में डाल दिए। बच्चों को संभालना, पति की जी हजूरी, घर के काम। सुबह ३ बजे से लेकर रात ११ बजे तक चक्कर घिन्नी सी घूमती, घर के कामों में व्यस्त रहती। उसको अपने लिए वक्त नहीं मिलता था। सास ने काम वाली बाई लगाने से साफ़ इन्कार कर दिया। वो कहती- मैं खाना नहीं खाऊंगी अगर बाई लगी तो, जब कि सासु माँ कभी कभार ही रहने आती थीं वो दूसरे बेटे के साथ दूसरे शहर में रहती थी! रानो बहुत परेशान रहती दो बच्चे घर का सारा काम, अल्हड़पन की उम्र, किसी की कोई मदद नहीं। पति गुस्सैल, अक्खड़ और ईगो से भरा हुआ।

एक दिन तो हद हो गई बेटे की तबीयत ठीक नहीं थी तो रानो को नाश्ता बनाने में ५ मिनट की देर हो गई तो पति ने खूब खरी खोटी सुनाई। मार पीट कर खाना फेंक कर घर से निकल गया । रानो भी अकेली बैठी रोती रही और सोचती रही मेरा क्या कसूर है ? उसकी मां ने बोला था कि बेटी की डोली मायके से विदा होती है और ससुराल से बेटी अर्थी में विदा होती है रोज़ के लड़ाई झगड़े मार पीट से दुखी हो कर उस ने आत्म हत्या करने का फैसला कर लिया और घर में रखी कीट नाशक दवा पी गई। पर भगवान जी नहीं चाहते थे कि उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाए। उस को मतली होने लगी और तबीयत बिगड़ गई, उसका २ साल का बेटा रानो के गले लग मम्मी २ कहते हुए ज़ोर ज़ोर से रोने लगा । रानो बहुत रोई। कहते हैं बच्चे मां के पैरों की बेड़ी होती है उस को हर हाल में जीना पड़ता हैं ।

दो बार आत्म हत्या की कोशिश नाकाम हो गई,तीसरी बार कोशिश करने लगी तो जैसे ही उसने कीटनाशक की। बोतल अपने मुँह के पास ले गयी तभी उसे लगा कि उसकी आत्मा पूछ रही है क्या तुम कायर हो ? कष्ट और हालातों से डर कर अपनी अनमोल जिंदगी खत्म कर दोगी ? तभी उसने फैसला कर लिया कि कभी आत्म हत्या के बारे मे नहीं सोचूंगी, हर हालात का डट कर मुकाबला करूंगी। शाम को पति घर आया तो एक बार भी रानो का हाल नहीं पूछा। रानो ने खाना बना के दिया तो वह खा कर बेड पर लेट गया। बेटे ने तोतली जुबां में उसको दिन की घटना के बारे में बताया। अगले दिन पति ने कोरे कागज़ पर रानो से दस्तखत करवा लिया कि कहीं दोबारा ऐसे क़दम उठाया तो वो और उसकी नौकरी सुरक्षित नहीं।

जब उस का दिल करता, अच्छे से बात करता, बार बार कहता मैं तुम से बहुत प्यार करता हूं। अंतरंग क्षणों में वो उसको (रानो) प्यार भी ऐसे करता जैसे कोई कोहिनूर हीरा बक्स से निकाल कर देखे और प्यार कर के दोबारा संभाल कर रख दे, उसको बहुत सहेज कर रखे।

धीरे धीरे रानो उसको समझने लगी वो नारियल की तरह ऊपर से सख्त और अन्दर से नर्म है पर रानो को कोई अधिकार नहीं था मन मुताबिक खाने पहनने का। वो विजय के हाथ की कठपुतली बन गई जैसे कहता वैसे करने लगी। अपनी इच्छा ख्वाहशें सब दफ़न कर दी। जब उसका पति गुस्से में धक्के मार कर घर से बाहर निकाल देता तो उसके पास जाने के लिए कोई जगह नहीं होती थी। मां बाप ने बोला था कि हंसी खुशी जब मर्जी आओ, झगड़ा कर के आओगी तो तेरे लिए घर का दरवाजा बंद है।

ऐसे ही दिन महीने साल गुजरने लगे। जब रानो ने बेटे के ६ साल बाद बेटी को जन्म दिया तो पति के स्वभाव में भी थोड़ा बदलाव आ गया पर गुस्से पर काबू नहीं कर पाता था। वही मारपीट घर से निकाल देना, सब वैसा ही रहा। जब गुस्सा शांत होता बाद में रानो से माफी मांगता, उसको बाहों में भर कर कहता- तुम भी मुझे मारो, वार बार माफ़ी मांगता। रानो का हाथ पकड़ कर अपने मुंह पर थप्पड़ मरवाता , कहता मैने जो भी तुम को गुस्से में भला बुरा कहा, गालियां निकाली उस के लिए मुझे माफ़ कर दो। मैं तेरे पैर पड़ता हूं, तुम अनदेखा कर दिया करो। सोचो कुत्ता भोंकता है, मुझे कभी भी छोड़ कर ना जाना। मैं तेरे बिना नहीं रह सकता, रानो चुपचाप सुनती, रोती रहती। सोचती ये कैसा इंसान है जिस का अपने गुस्से के ऊपर नियंत्रण नहीं। उसको प्यार से बाहों में भर कर समझाता, रानो भी सब भूल कर उसके सीने से लग जाती। उसको पता ही नहीं चला कि पति पत्नी का जिस्मानी रिश्ता कब रूहानी बन गया। विजय भी सब से कहता कि जैसे मेरा स्वभाव है , सिर्फ़ रानो ने समझा है मुझे जो मेरे पास है। कोई ओर होती तो मुझे छोड़ कर चली जाती। ऐसे ही समय पंख लगा कर उड़ता गया। कभी खुशी कभी ग़म में जिंदगी बीतने लगी।

-लुधियाना

खोपड़ी या वाणी से निकल कर कर्म या आचरण में पहुंचें पुस्तकें

प्रिंस अभिशेख अज्ञानी

पुस्तकें इंसान की सच्ची मित्र होती हैं। पुस्तकें पढ़ने से ज्ञान की खिड़की खुलती है, ज्ञान का विस्तार होता है, मनुष्य से कूप मंडूकता छिटकती है और उसकी सोच व दृष्टि विस्तृत होती है, चिंतन के नए आयाम खुलते हैं।

यह सभी सर्वविदित पहलू हैं और साधारण विवेक वाला व्यक्ति भी इन सभी तथ्यों को जानता है। दिक्कत यह है कि सब कुछ जानते हुए भी इंसान पढ़ने से कतराता या कन्नी काटता है। इसकी कई वजह हैं। यथा घोर आलस्य तथा अन्याय या विभिन्न कार्यों को पुस्तक पठन से ज्यादा प्राथमिकता देना आदि।

पुस्तकों के नजदीक होने या नजदीक आने में आज एक और सबसे बड़ा कारण हाथ लग गया है। वह है समाज संवाद माध्यम (सोशल मीडिया)। व्हाट्सएप, चेहरा पुस्तिका (फेसबुक), ई-संदेश (मेल) और स्नेपचैप बगैरह इसी समाज संवाद माध्यम के अंग है। समाज संवाद माध्यम के ये सभी स्वरूप ना सिर्फ अत्याकर्षक या लोक लुभावन हैं अपितु उपयोग करने में प्राय: सहज-सुलभ अथवा आरामदेह हैं।

पुस्तक पढ़ने की प्रवृत्ति या रूचि पहले ही अपेक्षाकृत अथवा तुलनात्मक रूप से कम रहती आई है जो मौजूदा दौर में और भी हाशिये पर पहुंचती जा रही है। आलम यह हो गया है कि पुस्तकें पढ़ने वाले को दकियानूस, पिछड़ा, गया-गुजरा, पोंगापंथी या बाबा आदम के जमाने तक का कहा/पुकारा जाने लगा है वहीं गूगल, संगणक (कम्प्यूटर), गोदी संगणक (लेपटॉप), ई-संदेश (मेल) बगैरह को पुस्तक का प्रतिरूप या समुचित, सार्थक-सकारात्मक, हूबहू अथवा पूर्ण विकल्प निरूपित किया जा रहा है।

नवयुवा भी गूगल आदि पर पुस्तकें पढ़ने को सहज, सुलभ, आरामदेह व अपनी प्रवृत्ति/रूचि के अनुरूप निरूपित करने लगे हैं और इसमें सच्चाई भी है। समस्या यह है कि समाज संवाद माध्यम के विभिन्न अंग बेहद चित्ताकर्षक व व्यापक होने से पुस्तक पढ़ने हेतु उद्यत हुआ व्यक्ति भी नकारात्मक-निरर्थक-अश्लील या बेहूदा क्षेत्र (साइट) में प्रवृत्त होकर अपना ध्येय भूल जाता अथवा छोड़ बैठता है। ऐसा नहीं कि पुस्तकों में यह सब नहीं होता बल्कि पुस्तकों में जो होता है, प्राय: वही समाज संवाद माध्यम में दृश्यमान होता है लेकिन पुस्तकों का पाठक एक समय में आमतौर पर एक ही क्षेत्र की पुस्तक पढ़ने में सक्षम हो पाता है। मसलन पाठ्यपुस्तक, साहित्यिक, शैक्षिक, आपराधिक या अन्य।

बहरहाल, इसका निदान यह हो सकता है कि ठोस या स्थूल रूप में पुस्तक का पाठक या समाज संवाद माध्यम पर पुस्तकों को पढ़ने वाला स्वयं को एकाग्र, अनुशासित, लक्ष्यबद्ध व समर्पित रखें। ऐसा होने पर ही हम उस जरूरत या पहलू को परवान चढ़ा सकते हैं, जिसे पुस्तक संस्कृति कहा जा रहा है।

पुस्तक संस्कृति के लिए पुस्तकीय या पाठकीय प्रतिबद्धता पढ़ने का माहौल बनाना व विकसित करना जरूरी है। यह कवायद तब और ज्यादा साकार हो सकती है, जब हम विभिन्न मांगलिक अवसरों या प्रसंगों में पुस्तकें भेंट करने और पुस्तकें पढ़ने हेतु लोगों को उत्सुक प्रेरित करें।

कहा तो यह भी जा रहा है कि लेखक ऐसा रूचिकर, प्रासंगिक या सामयिक लिखें कि लोग पढ़ने हेतु स्वत:उत्प्रेरित हो, मगर यह सिक्के का एक पहलू है। वस्तुत:भारत और समूचे संसार में सभी विषयों पर एक से बढ़कर एक पुस्तकें प्राय: सभी भाषाओं में उपलब्ध हैं, जरूरत है पाठक वर्ग खड़ा करने की।

अस्तु, एक अहम मसला और है वह यह कि बेहद कम या नगण्य पढ़ा जाए मगर जो भी पढ़ें, उसका श्रेष्ठ, सार्थक, सकारात्मक तथा सार तत्व आत्मसात किया जाए अन्यथा अंग्रेजी भाषा की मशहूर कहावत का अनुवाद एकदम सटीक है-

अधिक अध्ययन-अधिक भ्रम
ना अध्ययन- ना भ्रम
(मोर स्टडी मोर कंफ्यूजन, नो स्टडी नो कंफ्यूजन)

हालांकि यह समस्या का निदान ना होकर मसले को ही जड़मूल से काट फेंककर वस्तुस्थिति से आंखें मूंद लेने वाला तारीख है। हल यही है कि हम जो भी, जितनी भी पढ़ें, उसका सार-सार ग्राह्य कर लें और थोथा उड़ाते चलें।

दुनिया में एक से एक विद्वान हैं मगर वे ज्ञान को सिर्फ खोपड़ी में रखते हैं, आचरण या कर्म सर्वथा विपरीत करते हैं। संसार में तमाम समस्याओं, विकृतियों-विद्रपताओं-कुरुपताओं की मूल वजह यह भी है। पुस्तकों से रहित व्यक्ति यदि संत प्रवृत्ति का है तो वह पुस्तकालय में बैठे या पुस्तकों से घिरे मगर कृत्य में कदाचरण वाले व्यक्तियों से सर्वथा श्रेष्ठ हैं। अतएव संस्कृति का घोष हो सकता है।

-संपादक निर्दलीय समाचार पत्र समूह सह प्रकाशन, भोपाल/नई दिल्ली

सनातन संस्कृति का कोई अंत नहीं

डॉ. प्रभात पांडेय

प्राचीन सनातन संस्कृति अत्यंत उदार, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवन का मूल आधार रही है। गीता के अनुसार सनातन का आशय है जिसे अग्नि, नीर, अस्त्र-शस्त्र से नष्ट न किया जा सके, जो प्रत्येक सजीव-निर्जीव में विद्यमान है।

सनातन संस्कृति ज्ञानमय और अच्छे से अच्छा कर्म करने की प्रेरणा देने वाली शाश्वत धारा है अर्थात पूर्व काल से चली आ रही ऐसी संस्कृति, जिसका कोई अंत नहीं है। संपूर्ण संसार में सिर्फ हमारी संस्कृति ही है, जो एक मनुष्य को परिवार से, परिवार को समाज से और समाज को समग्र संसार से जोड़कर एक परिवार के रूप में देखती है। यानी सनातन संस्कृति मानव मात्र को ही नहीं अखिल ब्रह्मांड को ईश्वर का विराट स्वरूप मानती है ।

उपनिषदों में ईशावास्य इंद सवर्म अर्थात जगत के कण-कण में ईश्वर की व्याप्तता को स्वीकार किया गया है। गौरवशाली इतिहास, सहिष्णुता, संस्कार, रीति-रिवाज और उच्च आदर्शों के कारण सनातन संस्कृति का विश्व में उच्च स्थान है।प्रसिद्ध विचारक मार्कस ग्रेवी ने कहा है कि एक व्यक्ति जिसे अपने इतिहास, उद्गम और संस्कृति की जानकारी नहीं है, वह बिना जड़ वाले वृक्ष के समान है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी संस्कृति और उसके ज्ञान का अनुकरण कर अपनी वास्तविक पहचान को धारण करे। हमें अपनी संस्कृति पर गर्व करना चाहिए और उसी अनुसार जीवन में आचरण करना चाहिए।संस्कृति के बिना सनातन धर्म की कल्पना मुश्किल है। संप्रति जिस प्रकार नई पीढ़ी अपनी जड़ों से कटकर दिशाहीन हो रही है, उसे देखते हुए नई पीढ़ी को अपने मूल से जोड़ने के लिए अभिभावकों-शिक्षकों का दायित्व है कि वे उन्हें भारतीय संस्कृति के बारे में बताएं। हम सभी को इस दिशा में सोचना होगा कि कैसे भारत की वैदिक पौराणिक संस्कृति का मान बना रहे। हमें अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए संकल्पित होना चाहिए। **– भोपाल**

बरगद होते हैं पिता का लोकार्पण

निर्दलीय के लिए प्रभात पांडेय

रवीन्द्र भवन सभागार, सागर में आरिणी चैरिटेबल फाउंडेशन द्वारा आयोजित कार्यक्रम जगतारा पं श्री जगदीश प्रसाद पाण्डेय की जन्म जयंती के अवसर पर उनकी स्मृति में आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में बरगद होते हैं पिता लेखिका डॉ मीनू पांडेय नयन पुस्तक का विमोचन, दिवंगत पर व्यक्तित्व परिचर्चा एवं जग-तारा प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन भी किया गया।
कार्यक्रम में प्रो. वाय.एस. ठाकुर, कुलगुरु, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर अध्यक्ष के रूप में, श्री अनूप मिश्र पूर्व सांसद, पूर्व मंत्री मध्य प्रदेश शासन, मुख्य अतिथि के रूप में प्रो अखिलेश पांडेय, पूर्व कुलपति, विक्रमादित्य विश्व विद्यालय, उज्जैन विशिष्ट अतिथि के रूप में एवं प्रो. विनोद मिश्रा, कुलगुरु, अवंती बाई विश्वविद्यालय सागर, सारस्वत अतिथि के रूप में उपस्थित रहे। साथ ही आमंत्रित वक्ता के रूप में कार्यक्रम में श्री दीपक तिवारी, पूर्व कुलपति माखन लाल पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल की उपस्थिति रही। कार्यक्रम संयोजक श्री प्रवीण पांडेय भी मंच पर उपस्थित रहे। कुटुंब प्रबोधन पर आधारित पुस्तक बरगद होते हैं पिता का सभी अतिथियों द्वारा विमोचन किया गया। यह पुस्तक डॉ मीनू पांडेय नयन द्वारा सृजित की गयी है जो कि समस्त पितृतुल्य व्यक्तित्व को समर्पित है एवं पांडेय परिवार के समस्त सदस्यों के स्मृति प्रसंग इसमें समाहित हैं। यह लेखिका द्वारा अपने श्वसुर को भावांजलि है। पुस्तक विमोचन के उपरांत लेखिका डॉ मीनू पांडेय ने पुस्तक में समाहित सभी पक्षों का विस्तृत उल्लेख बताया। सभी अतिथियों ने पुस्तक के नाम एवं उसकी विषय वस्तु की सराहना की। डॉ प्रभात पांडेय ने पुस्तक की समीक्षा प्रस्तुत की। विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान देने हेतु चयनित समाज सेवकों को जगतारा प्रतिभा सम्मान-2025 से सम्मानित किया गया जो हैं मानसमणि सम्मान पुरोहित पुजारी विद्वत संघ के अध्यक्ष पं.शिवप्रसाद तिवारी,वयो श्रेष्ठ सम्मान जी एल छत्रसाल अध्यक्ष पेंशनर समाज,प्रेरक शिक्षक सम्मान सतीश पांडेय प्राचार्य बरारू,साहित्य सृजन सम्मान पवन रजक कवि नरयावली,जीव सेवा सम्मान परांग शुक्ला और बासु चौबे आदि। सभी को शाल, श्रीफल, स्मृति चिन्ह एवं प्रशस्तिपत्र देकर सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि पूर्व सांसद एवं पूर्व मंत्री श्री अनूप मिश्र थे। सभी आमंत्रित अतिथियों ने पं जगदीश प्रसाद पाण्डेय के संपूर्ण व्यक्तित्व पर अपनी बात रखते हुये कई संस्मरण साझा किये। कार्यक्रम का संचालन प्रो अमर जैन ने किया। आभार प्रदर्शन मनोज पाण्डेय द्वारा किया गया।

परलोक की नहीं जीवन की कविताएं हैं: तेरहवीं तक

वरिष्ठ साहित्यकार, कवि और शिक्षाविद श्री कृष्णदेव चतुर्वेदी का कविता संग्रह *तेरहवीं तक* एक ऐसी कृति है जिसमें कुल ६१ कविताएं है। कविताएं छंद मुक्त है, सरस और सरल है। ये व्यक्तिगत समस्याओं को बेध कर सार्वजनिक, सर्व जन-हिताय के रूप में दिखाई पडती है तथा मानव जीवन की फुलवारी में खिले हुए विभिन्न प्रकार के फूलों का अहसास कराती हैं। इस संग्रह में मानव जीवन के सुख-दुख प्रेम वात्सल्य दुलार एवं घटने वाली हास्य व्यंग्य की घटनाओं को समाहित किया गया है। संग्रह के पहले कविताओ की वंदना है।

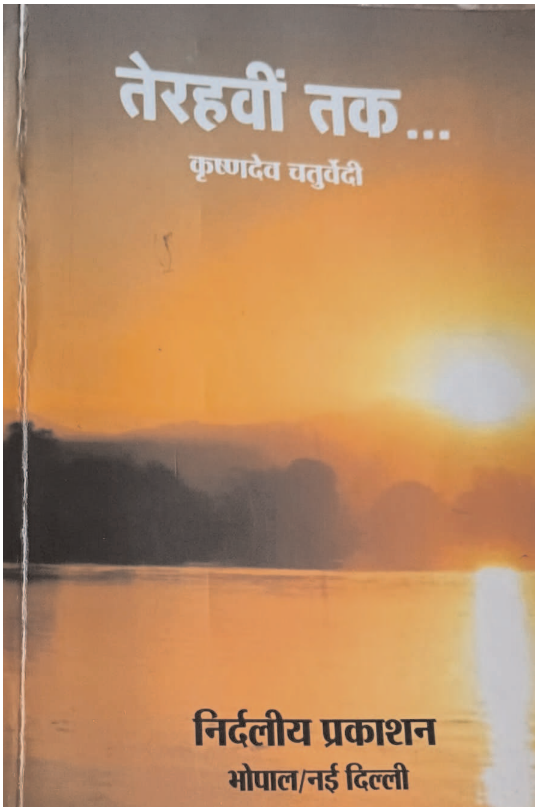

शीर्षक तेरहवीं तक सनातन धर्म का वह संस्कार है जिसमें व्यक्ति विशेष अपने किसी स्वजन के स्वर्गवास पश्चात उसके ना होने की सूचना ज्ञापित करने के लिए समाज के प्रत्येक वर्ग को आमंत्रित कर आभार ज्ञापित करता है। उक्त तथ्य को अनुभूतियों के माध्यम से अपनी कल्पना को यथार्थ के बंधन में बांधकर प्रस्तुत करना सहज नहीं तो कठिन और दुष्कर कार्य है। कवि ने एक कविता में लिखा है-

पोस्टमैन दिया ,गांव से भेजा हुआ तार,/बेटा तुम्हारी दादी के बाद टूट गया है ......तुम्हारे दादा के जीवन का तार। अब कहां है तुम्हारी बुआ......... ?,खो गए हैं ताऊ जी, हार कर, ... चले गए हैं चाचा समय से पहले/इस संसार को छोड़कर।÷

कविता समाज में घट रही विपदाओं को व्यक्त करती हैं यथा शीर्षक फाइल नामक कविता दृष्टव्य है-

आज की व्यवस्था में /रोटी को खोजते हुए इंसान को/ढूंढ रहा है गिरोह-बाजी में प्रशिक्षित - ठग।(पृष्ठ-५०) वहीं वर्तमान समय के छोटे भैया नेता की बढ़ती हुई शानो-शौकत से प्रभावित होकर नेता बनना चाहता है।उसने सपना देखा है---

खुशी जताती मची खलबली, मेरे सपने स्थान में।
सधा सु-नेता बनूं यहां मैं, अपने हिंदुस्तान में।।

संग्रह की एक कविता जिसका शीर्षक है - अनजान हो गए-की ये पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

हर मानव ब्राह्मण है/इसका प्रमाण/ पूर्वजों द्वारा प्रदत्त यह ऋषित्व है। कविता संग्रह तेरहवीं तक में-

भूख, ध्रुव हठ, स्नेह, तकदीर, आशा, भ्रम, स्वाती मन,

जैसी सार्थक एवं कर गर्वित रचनाएं हैं तो कल्पना के लोक में तिलस्म सी दिखती हुई रचनाएं भी है यथा ----जैसे को तैसा, बातें ही बातें, चीखती नदी, सज्जन सेवक, भरत के भारत में आदि। यह कविताएं पाठक के मन को छूती हुई वर्तमान दौर की कृत्रिमिता को स्वर देती है। मानवीय दृष्टिकोण से शोषण और शोषित के बीच घट रही अवव्यवस्थाओं को उजागर करती हुई कविताओं में, ÷अंग्रेजियत, मैं लिफाफा हूं, उसका स्वभाव, शीत हो या घाम÷ सहित कई अन्य कविताएं भी हैं।

इसके अलावा कुछ शीर्षक इस प्रकार भी है---किरनीया, फुल्ला, तोता, दल्लान में, बल्लू, नेता, आशा, चौपड़ पॉसा, ऑख, रावण, आदि रहस्यवादी / छायावादी कविताएं हैं।

इन कविताओं को स्वयं कवि ने अ-कविता कहा है।

इन अ-कविताओं के बीच में मनोरम छंद का मुक्तक और चलो लगाए पेड जैसी सार्थक एवं छंदयुक्त कविताएं भी है। कवि कृष्णदेव चतुर्वेदी कि यह ९वीं पुस्तक है। इसके पहले क्रमशः चीखती नदी, हम भारतीय, सुबह सवेरे, शब्द आपका बन गय, कब आएगी नानी, अपनी डफली अपना राग, जागो हो बलमुआ, शैक्षिक बरखा और कूप कुंडलिया आदि पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।

पुस्तक का नाम: तेरहवीं तक, कवि-कृष्णदेव चतुर्वेदी
प्रकाशक -निर्दलीय प्रकाशन, भोपाल

समीक्षक-
राजकुमार गुप्ता, ललिता नगर,
कोलार मार्ग भोपाल

INDIA ART FESTIVAL

INDIA ART FESTIVAL™
India's Contemporary Art Fair

The biggest Art Fair network since 2011

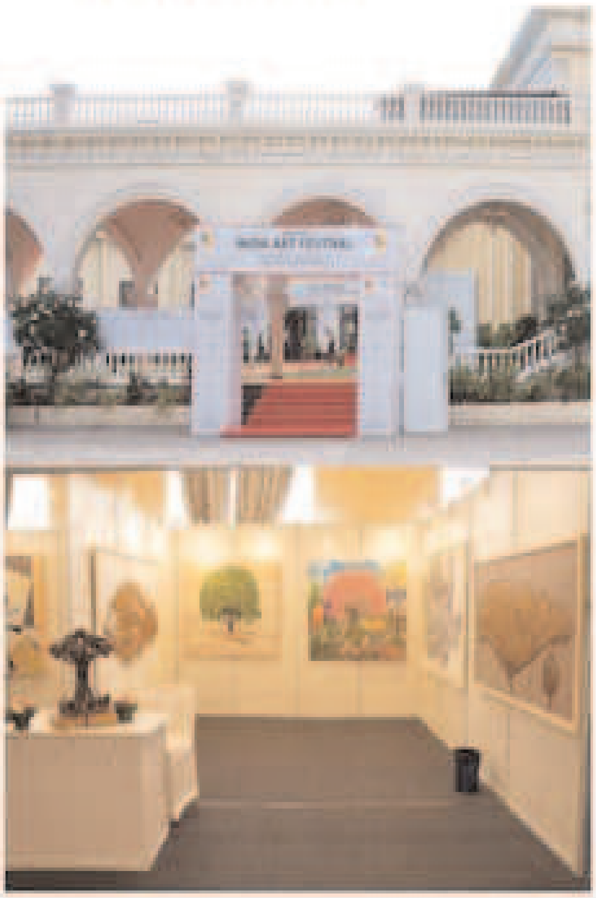

INDIA ART FESTIVAL

04-06 APRIL 2025
KINGS CROWN CONVENTION HYDERABAD

07-09 NOV 2025
CONSTITUTION CLUB OF INDIA NEW DELHI

12-14 DEC 2025
PALACE GROUNDS, BENGALURU

30 JAN-01 FEB 2026
NEHRU CENTRE, MUMBAI

MUMBAI ART FAIR

10-12 OCT 2025
NEHRU CENTRE, MUMBAI

+91 8976044104, 8976044107, 8976044108

indiaartfestival@gmail.com, indiaartfestival2014@gmail.com
indiaartfestival2016@gmail.com, www.indiaartfestival.com

सबसे पहले
लाइफ इंश्योरेंस
प्रीमियम
रुक जाए.
फ़ायदे
चलते रहें.
आकर्षक लाभों के साथ जीवन बीमा सुरक्षा
पॉलिसी अवधि | प्रीमियम भुगतान अवधि
16 | 10
21 | 15
25 | 16
एलआईसी का
जीवन लाभ
एक पार, नॉन-लिंक्ड, जीवन, व्यक्तिगत, बचत प्लान
Plan No.: 736
UIN No.: 512N304V03
• न्यूनतम मूल बीमा राशि : ₹200,000/-
• अधिकतम मूल बीमा राशि : कोई सीमा नहीं
• प्रवेश की न्यूनतम आयु : 8 वर्ष
• प्रवेश की अधिकतम आयु : पॉलिसी अवधि 25/21/16 वर्ष के लिए 50/54/59 वर्ष
अपने एजेंट/शाखा से संपर्क करें या हमारी वेबसाइट www.licindia.in पर विज़िट करें या एसएमएस करें 'आपके शहर का नाम' 56767474 पर
डाउनलोड करें एलआईसी मोबाइल ऐप LIC digital
कॉल सेन्टर सर्विस (022) 6827 6827
हमारा वॉट्सएप नं. 8976862090
कहिए 'Hi'
हमें यहाँ फॉलो करें: LIC India Forever | IRDAI Regn No.: 512
नकली फोन कॉल्स और झूठे/धोखाधड़ी पूर्ण ऑफ़र्स से सावधान रहें. आईआरडीएआई जीवन बीमा पॉलिसियों की बिक्री, बोनस घोषित करने या प्रीमियमों के निवेश जैसी गतिविधियों में संलग्न नहीं है. ऐसे फोन कॉल प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से अनुरोध है कि वे पुलिस में इसकी शिकायत दर्ज करवाएँ.
बिक्री समापन से पूर्व अधिक जानकारी या जोखिम घटकों, नियम और शर्तों के लिए बिक्री पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़ें.
LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA
मध्य क्षेत्र, भोपाल
हर पल आपके साथ
LIC/P1/2024-25/18/Hin

THE BEST MEDIA TO ENHANCE
YOUR FOOTWEAR BUSINESS
footbizz
Step into the Future of Footwear
SCAN THE QR CODE TO DOWNLOAD THE APP
For Apple
For Android
INDIA'S FIRST
B2B FOOTWEAR APP
THAT SOLVES EVERY
PROBLEM FACED BY
MANUFACTURERS
AND WHOLESALERS.
Combo Offer
@4000/-
DFMN + FOOTBIZZ
Get 1 Year Subscription
SOFT COPY
ALSO AVAILABLE
Book Your
Advertisement Today
& Promote Your Brand
in India & Abroad
DELHI FOOTWEAR MARKET NEWS
ESTD. 1984
footbizz
DELHI FOOTWEAR MARKET NEWS
25, Central Market, Ashok Vihar, Phase-1, New Delhi -110052
Ph. : 011-47028361, Mob.: 9717730178, Email: dfmn22@gmail.com

RAM NIWAS & SONS
SRD STEELS (P) LTD.

SETH RAM NIWAS GUPTA
Chairman

SANJEEV GUPTA
Director

RAJEEV GUPTA
Director

DEEPAK GUPTA
Director

skgc

SHRI KRISHAN GRIT CO.
SKGC MINERALS LTD.

BRANCHES

Delhi • Mumbai • Bhopal • Bhilai • Ludhiana • Faridabad • Ahmedabad
Ghaziabad • Roorkee • Bangalore • Indore • Jaipur • Kanpur (U.P.)

Dr. Sanjeev Gupta (The Winner of)

- Global Business Icon Award - 2018
- Asia One-Global Indian of the Year 2018-19
- India's Greatest Brands 2018-19
- ARCH of Excellence Award
- Winner of National Award in 2021
- Meri Dilli Shresth Shree Sammaan - Nov. 2020
- ISI Mark from Bureau of Indian Standard - Dec. 2020
- Meri Dilli Shresth Shree Sammaan - Aug. 2022

स्वामी-मुद्रक-प्रकाशक-संपादक कैलाश श्रीवास्तव 'आदमी' द्वारा राघव भवन,गली क्र. 6/72 दयालपुर,दिल्ली 110090 से प्रकाशित,निर्दलीय प्रेस,भोपाल से मुद्रित।